हे बच्चो ! तुम्हें,

प्रणाम

उन प्रणम्य बालकों की
याद में
जो
महान् बने हैं

श्री व्यथित हृदय

प्रणम्य बालक

एक ज्ञानी बालक

बालक अष्टावक्र

ज्ञानी देखे हों बड़े-बड़े,
पर क्या देखा बालक ज्ञानी ?
टेढ़ी-मेढ़ी सी काया में,
देखा क्या आबदार पानी ?

है प्रणाम उसको मेरा,
वह अष्टावक्र निराला है।
छोटी-सी पड़ी लंगोटी है,
पहने फूलों की माला है।

एक मुनि थे। मुनि का नाम कहोड़ था। कहोड़ बहुत बड़े विद्वान थे। कहोड़ की पत्नी का नाम सुजाता था। समय पर 'सुजाता' गर्भवती हुई।

एक दिन कहोड़ मुनि अपने शिष्यों को वेद पढ़ा रहे थे। सहसा कोई बोल उठा—"पिताजी, आप बराबर वेद पाठ करते तो हैं, पर वह ठीक-ठीक नहीं होता।" यह कहोड़ मुनि का बालक था, और अभी अपनी माँ के पेट में था।

कहोड़ मुनि क्रोधित हो उठे। उन्होंने कहा—"अपनी माँ के पेट से ही तू टेढ़ी-मेढ़ी बातें कर रहा है, जब पैदा होगा, तो न जाने क्या करेगा ?"

कहोड़ मुनि ने बालक को शाप दिया—"तू टेढ़ी-मेढ़ी बातें कर रहा है, इसलिए तेरे शरीर के अंग आठ जगह से टेढ़े-मेढ़े रहेंगे।"

बालक के पैदा होने का समय जब निकट आया, तब कहोड़ मुनि को धन की आवश्यकता पड़ी। कहोड़ मुनि धन के लिए राजा जनक के पास गये।

जनक मिथिला के राजा थे। मिथिला बिहार प्रदेश में है। सीताजी मिथिला के राजा जनकजी की ही पुत्री थी।

राजा जनक बहुत बड़े विद्वान थे। वे विद्वानों का अधिक सम्मान करते थे। उनके दरबार में बड़े-बड़े विद्वान रहते थे।

उन दिनों जनक की राजसभा में एक बहुत बड़ा विद्वान आया हुआ था। उसका नाम बंदी था। बंदी से जो शास्त्रार्थ में हार जाता था, वह उसे समुद्र में डुबवा दिया करता था।

कहोड़ मुनि भी बंदी से शास्त्रार्थ में हार गये। अतः बंदी ने उन्हें भी समुद्र में डुबवा दिया।

उधर सुजाता के गर्भ से, एक बालक ने जन्म लिया। सचमुच बालक के शरीर के अंग आठ जगह से टेढ़े-मेढ़े थे। बालक का नाम अष्टावक्र रखा गया क्योंकि उसके शरीर के अंग आठ जगह से टेढ़े थे।

'अष्टावक्र' बड़ा तेजस्वी और विद्वान था। वह अपनी माँ के पेट से ही सारी विद्याएँ और सारा ज्ञान लेकर पैदा हुआ था।

'अष्टावक्र' जब बारह वर्ष का हुआ, तो एक दिन उसने अपनी माँ से कहा—"माँ, सबके तो पिताजी हैं, पर मेरे पिता कहाँ गए ?"

पहले तो अष्टावक्र की माँ ने बात को टालने का यत्न किया, किन्तु जब अष्टावक्र बार-बार हठ करने लगा, तो उसे अष्टावक्र को उसके पिता के बारे में बताना ही पड़ा। उसने कहा, उसके पिता का नाम 'कहोड़' था। वे धन के लिए राजा जनक के पास गए थे, पर वहाँ वेदी से शास्त्रार्थ में हार गये। वेदी ने उन्हें समुद्र में डुबवा दिया।

अष्टावक्र की रगों में बिजली दौड़ गई। उसने अपनी माँ से कहा—"माँ, मैं राजा जनक की राजसभा में जाऊँगा। मैं वेदी को शास्त्रार्थ में हराकर उससे अपने पिता का बदला लूँगा।

अष्टावक्र उसी दिन अपने मामा, श्वेतकेतु के साथ मिथिला के लिए चल पड़ा।

अष्टावक्र की उम्र उस समय केवल बारह वर्ष की थी। अष्टावक्र श्वेतकेतु के साथ जनक की यज्ञशाला के द्वार पर जा पहुँचा। पर द्वारपाल ने उसे भीतर जाने से रोक दिया। क्योंकि भीतर वृद्ध और बड़ी उम्र के विद्वान ही जा सकते थे।

अष्टावक्र बोल उठा—"बाल पक जाने से, या अधिक उम्र

होने से, या अधिक धन होने से और या अच्छे कुल में पैदा होने से कोई सबसे बड़ा विद्वान नहीं हो सकता ।"

आखिर, बात राजा जनक के कानों तक पहुँची । जनक ने दोनों बालकों को बड़े अदब से अपने पास बुलाया ।

अष्टावक्र ने जनक से निवेदन किया—"महाराज, मैं कहोड़ मुनि का पुत्र अष्टावक्र हूँ । मैं आपके प्रसिद्ध पंडित वेदी से शास्त्रार्थ करूँगा ।"

जनक आश्चर्य में पड़ गए । यह टेढ़े-मेढ़े अंगों वाला और छोटा बालक वेदी से शास्त्रार्थ करेगा ? कहीं यह विनोद तो नहीं कर रहा है ! जनक अष्टावक्र की बात को टालने लगे ।

किन्तु जब अष्टावक्र बार-बार शास्त्रार्थ के लिए हठ करने लगा, तब जनक उसके ज्ञान की परीक्षा करने के लिए उससे तरह-तरह के प्रश्न करने लगे ।

अष्टावक्र ने जनक के प्रश्नों का ऐसा उत्तर दिया कि जनक आश्चर्य में डूब गए । जनक को विश्वास हो गया, 'यह बालक साधारण बालक नहीं', साक्षात् ज्ञान का अवतार है ।

जनक ने अष्टावक्र और वेदी के शास्त्रार्थ का प्रबन्ध कर दिया ।

जनक की राजसभा बड़े-बड़े विद्वानों से भरी थी । स्वयं जनक भी राज सिंहासन पर बैठे हुए थे । वेदी और अष्टावक्र का शास्त्रार्थ होने लगा ।

अष्टावक्र ने ऐसे-ऐसे प्रश्न किए कि वेदी के लेने के देने पड़ गए । उसने अपनी हार स्वीकार कर ली । अब तो उसके प्राण ओठों पर आ गए । उसे भय हुआ, कहीं वह उसे समुद्र में डुबाकर उससे अपने पिता की मृत्यु का बदला न ले । पर अष्टावक्र ने वेदी को क्षमा कर दिया ।

अष्टावक्र की 'जय-जय' से सारी राजसभा गूंज उठी। केवल इतना ही नहीं, अष्टावक्र के यश की कहानी चारों ओर गूंज उठी।

तुम समझ सकते हो कि जो अष्टावक्र बचपन में ही बहुत बड़ा विद्वान था, वह बड़ा होने पर किस तरह लोगों से पूजा गया होगा।

आज भी अष्टावक्र का नाम लेते हुए, उसके ज्ञानी बचपन के लिए मन में श्रद्धा जाग पड़ती है।

किसी कुरूप बालक को देखकर कभी उससे घृणा न करो। कौन जाने, यह भी अष्टावक्र के ही समान बहुत बड़ा ज्ञानी हो।

एक भक्त बालक

बालक मार्कण्डेय

है उम्र हमारी छोटी सी,
पर है चिन्ता की बात नहीं।
मैं उम्र बढ़ा लूंगा अपनी,
मैं मर सकता हूँ कभी नहीं।

है प्राण हमारा शंकर का,
मैं नाम उन्हीं का लेता हूँ।
है महाकाल, मेरा रक्षक,
मैं कालबली का चेता हूँ।

एक मुनि थे। मुनि का नाम मृकण्ड था।

मृकण्ड को कोई सन्तान नहीं थी। मृकण्ड मुनि ने संता
के लिए अपनी पत्नी के साथ भगवान शंकर की पूजा अ
कठिन से कठिन व्रत किया।

भगवान शंकर प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रकट होकर मृक
मुनि से पूछा—"मुने, कैसा पुत्र चाहते हो? अच्छे गुणों
युक्त कम आयु का या गुणों से रहित अधिक आयु का?"

मृकण्ड मुनि ने उत्तर दिया—"प्रभो! बिना गुणों
अधिक उम्र वाला पुत्र लेकर मैं क्या करूँगा, ऐसा पुत्र तो दु
देने के अलावा और कुछ नहीं करता। भले ही उम्र कम
पर हमें तो अच्छे गुणों वाला पुत्र ही दीजिए।"

भगवान शंकर वरदान देकर अन्तर्ध्यान हो गए।

कुछ दिनों के बाद मृकण्ड मुनि की पत्नी मरूदुनी के
बालक पैदा हुआ। बालक बड़ा तेजवान् था। उसे देखने से ऐ
लगता था, मानो स्वयं भगवान् शंकर ने ही मृकण्ड मुनि के
में जन्म लिया हो।

मृकण्ड मुनि ने बालक का नाम मार्कण्डेय रखा। बाल
मार्कण्डेय धीरे-धीरे बढ़ने लगा। जब वह कुछ बड़ा हुआ
मृकण्ड मुनि ने उसे यह बात बता दी कि उसकी आयु
सोलह वर्ष की है।

मृकण्ड मुनि ने बालक मार्कण्डेय से कहा—"बेटा, तु
रास्ते में जहाँ भी कोई साधु-संन्यासी मिले, तुम उसे बड़े आ
से प्रणाम करना।"

मृकण्ड मुनि ने बालक मार्कण्डेय को प्रेरणा दी कि यदि वह अपनी उम्र बढ़ाना चाहता है तो उसे भगवान् शंकर की शरण में जाना चाहिए।

मृकण्ड मुनि ने बालक मार्कण्डेय को भगवान् शंकर की पूजा और जप-तप के नियम भी बता दिए।

बालक मार्कण्डेय घर से निकल पड़ा। वह दक्षिण में समुद्र के किनारे गया, वहाँ शिवजी की मूर्ति बनाकर उनके पूजा-पाठ में लग गया।

उधर से जो भी साधु-संन्यासी निकलता, बालक मार्कण्डेय उसे बड़े आदर से प्रणाम करता। सभी बड़े प्रेम से प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते—"चिरजीवी हो।" अर्थात् बहुत दिनों तक जीवित रहो।

एक दिन वशिष्ठ मुनि भी उधर से ही निकले। बालक मार्कण्डेय ने उन्हें बड़ी श्रद्धा से प्रणाम किया। वशिष्ठ मुनि ने भी आशीर्वाद दिया—"चिरजीवी हो।"

पर सहसा वशिष्ठजी बालक मार्कण्डेय के मस्तक की रेखा देखकर चौंक उठे, क्योंकि मस्तक की रेखा के हिसाब से बालक मार्कण्डेय की आयु केवल तीन दिन शेष रह गई थी।

वशिष्ठ मुनि ने सोचा—"अब तो उनकी बात झूठी हुई। क्योंकि वे बालक मार्कण्डेय को बहुत दिनों तक जीवित रहने का आशीर्वाद दे चुके थे।"

वशिष्ठजी बालक मार्कण्डेय को लेकर ब्रह्माजी के पास गए। उन्होंने ब्रह्माजी से प्रार्थना की कि वे बालक मार्कण्डेय की आयु बढ़ाएँ।

पर ब्रह्माजी ने असमर्थता प्रकट की। उन्होंने कहा—"भाग्य की रेखा को तो भगवान् शंकर के अतिरिक्त और कोई नहीं [illegible]ल सकता।"

बालक मार्कण्डेय फिर अपने आश्रम में लौट गया। वह वशिष्ठ मुनि की प्रेरणा से फिर भगवान शंकर की पूजा में लग गया।

शेष तीन दिन भी पूरे हो गए थे। बालक मार्कण्डेय की आयु समाप्त हो चुकी थी। वह शंकरजी की मूर्ति के पास बैठकर उनकी पूजा कर रहा था।

सहसा बालक मार्कण्डेय को बहुत ही काले रंग का एक आदमी दिखाई पड़ा। उसके लाल रंग के गोल-गोल नेत्र थे। उसके रोम-रोम में सांप और बिच्छु लटक रहे थे। बड़ी-बड़ी उसकी दाढ़ें थीं। ऐसा लगता था मानों वह कोई बहुत बड़ा राक्षस हो।

उसने बालक मार्कण्डेय को घूरकर देखते हुए कहा—"बालक *मैं काल हूँ। तुम्हारी आयु पूरी हो चुकी है, मैं तुम्हें अपने* साथ ले चलूंगा।"

काल ने अपना फन्दा बालक मार्कण्डेय के गले में डाल दिया।

बालक मार्कण्डेय ने कहा—"काल! तू ठहर! क्योंकि मैं भगवान् शंकर की पूजा कर रहा हूँ। जब तक मेरी पूजा समाप्त न हो जाए; तुझे रुकना पड़ेगा।"

काल हंस पड़ा। उसने कहा—"मेरा नाम काल है। मैं रुकना नहीं जानता। मैं बड़े-बड़े सम्राटों, बड़े-बड़े वीरों के लिए तो कभी रुकता नही! तुम्हारे लिये रुकूंगा, एक छोटे-से बालक के लिए?"

बालक मार्कण्डेय बोल उठा—"पर मैं तो महाकाल की पूजा में लगा हूँ। महाकाल 'काल' को भी बांधकर रखते हैं। जब तक मेरी पूजा समाप्त न हो जाये तुझे रुकना ही पड़ेगा।"

पर 'काल' ने बालक मार्कण्डेय की बात पर ध्यान न दिया। वह बालक मार्कण्डेय को अपने साथ ले जाने के लिये फंदे को खींचने लगे।

सहसा एक बड़े ज़ोर का शब्द हुआ। शब्द के साथ ही साथ स्वयं भगवान् शंकर मूर्ति के भीतर से प्रकट हो उठे। उन्होंने काल पर प्रहार किया। काल भाग खड़ा हुआ।

बालक मार्कण्डेय भगवान् शंकर के चरणों पर गिर पड़ा। भगवान् शंकर ने बालक मार्कण्डेय को अमर होने का आशीर्वाद दिया।

बालक मार्कण्डेय जब बड़ा हुआ तो मार्कण्डेय मुनि के नाम से प्रसिद्ध हुआ। भगवान् शंकर के आशीर्वाद से युग-युगों तक मार्कण्डेय मुनि का नाम अमर रहेगा।

बालक मार्कण्डेय ने पुरुषार्थ करके काल को भी जीत लिया। तुम भी पुरुषार्थ करके असम्भव को भी संभव कर सकते हो।

एक गुरु-भक्त बालक

बालक एकलव्य

मिट्टी की गुरु-मूर्ति बनाकर,
जिसने सीखा बाण चलाना ।
सीखा जिसने गुरु-चरणों पर,
दी अँगुली को भेंट चढ़ाना ।

एकलव्य वह वीर प्रतापी,
बालक बड़ा निराला था ।
जन्मा भील झोंपड़ी में था,
धरती का उजयाला था ।

एक वन में एक भील रहता था। भील का नाम हिरण्यधनु था। हिरण्यधनु का एक लड़का था। लड़के का नाम एकलव्य था। एक दिन एकलव्य हस्तिनापुर गया। हस्तिनापुर, मेरठ के पास है।

उन दिनों हस्तिनापुर कौरव और पांडव नाम के राजाओं की राजधानी थी। राजाओं के बालकों को, एक बहुत बड़े विद्वान धनुष बाण चलाना सिखाया करते थे। उस विद्वान् का नाम द्रोणाचार्य था।

बालक एकलव्य द्रोणाचार्य के सामने उपस्थित हुआ। एकलव्य काले रंग का था। फटे-पुराने कपड़े पहने था। इसने बड़े आदर से, गुरु द्रोणाचार्यजी को प्रणाम किया।

द्रोणाचार्य ने पूछा—"तुम कौन हो? मेरे पास क्यों आये हो?"

बालक एकलव्य ने हाथ जोड़कर कहा—"गुरुदेव मैं एक भील बालक हूँ। मैं आपके पास रहकर आपसे धनुष विद्या सीखना चाहता हूँ।"

द्रोणाचार्य बड़ी चिन्ता में पड़ गए। क्योंकि वे तो बड़े-बड़े राजाओं के बालकों को धनुष विद्या सिखाया करते थे। वे उस भील के लड़के को उनके साथ कैसे धनुष-विद्या सिखा सकते थे?

द्रोणाचार्य कुछ देर तक मन-ही-मन सोचते रहे। फिर उन्होंने कहा—"बालक मैं तुमको धनुष विद्या नहीं सिखा सकता। मैं केवल उन्हीं बालकों को धनुष-विद्या सिखाता हूँ जो ऊँचे कुल के होते हैं।"

बालक एकलव्य के मन में दुःख तो पैदा हुआ, पर वह निराश न हुआ। उसने द्रोणाचार्यजी को प्रणाम करके कहा—"गुरुदेव, मैं तो आपको गुरु मान चुका हूँ। आप भले ही मुझे धनुष-विद्या न सिखाएँ, पर मैं तो आप से धनुष-विद्या सीखकर रहूँगा। आप दया करके मुझे अपना आशीर्वाद दें।"

एकलव्य फिर लौटकर अपने घर नहीं गया। उसने धनुष-विद्या सीखने का प्रण किया था। उसे अपने प्रण को पूरा करना था, सफलता की ऊँची चोटी पर चढ़ना था। वह वन में जा पहुँचा। उसने गुरु द्रोणाचार्य की मिट्टी की एक मूर्ति बनाई। वह उस मूर्ति को स्थापित कर, उसके सामने बाण चलाना सीखने लगा।

इसी तरह कुछ वर्ष बीत गए। एकलव्य धीरे-धीरे धनुष और बाण-विद्या का पूरा पंडित बन गया।

कई वर्षों के बाद एक दिन द्रोणाचार्य अपने शिष्यों के साथ निशाने के अभ्यास के लिए उसी वन में जा पहुँचे। उनके साथ एक कुत्ता भी था।

संयोग की बात, कुत्ता साथ छोड़कर घूमता-घूमता उस स्थान पर जा पहुँचा, जहाँ बालक एकलव्य मूर्ति के सामने बाण चलाना सीख रहा था।

एकलव्य के बाल बढ़ गए थे। वह पेड़ों की छाल के कपड़े पहने था। उसके अनोखे वेश को देखकर कुत्ता रह-रहकर भौंकने लगा।

पहले तो एकलव्य ने कुत्ते को चुप कराने का यत्न किया, पर जब कुत्ते ने भौंकना बन्द न किया तो उसके मुँह में सात ऐसे बाण मारे कि कुत्ते का मुँह बाणों से भर गया पर उसे चोट बिल्कुल न लगी।

कुत्ता भाग खड़ा हुआ। वह अपने मुँह में बाणों को भरे हुए फिर द्रोणाचार्य के पास पहुँचा। द्रोणाचार्य और उनके शिष्य कुत्ते को देखकर आश्चर्य में पड़ गए। वे सोचने लगे कि इस वन में ऐसा कौन-सा वीर है, जिसने कुत्ते के मुँह में इस प्रकार बाण फँसा दिए हैं कि उसे चोट बिल्कुल नहीं मालूम हो रही है।

द्रोणाचार्य अपने शिष्यों के साथ उस वीर को ढूंढ़ने के लिए निकल पड़े। आगे-आगे उनका कुत्ता चल रहा था।

आखिर द्रोणाचार्य अपने शिष्यों के साथ उस स्थान पर जा पहुँचे, जहाँ बालक एकलव्य बाण चलाना सीख रहा था।

बालक एकलव्य द्रोणाचार्य को देखते ही उनके चरणों पर गिर पड़ा।

द्रोणाचार्य ने उससे पूछा—"श्रेष्ठ वीर, क्या तुमने ही, हमारे इस कुत्ते के मुँह में बाण मारे हैं ?"

एकलव्य ने कुछ उत्तर न देकर, अपना मस्तक झुका दिया।

द्रोणाचार्य ने फिर पूछा—"क्या मैं जान सकता हूँ कि तुमने यह बाण-विद्या किससे सीखी ?"

बालक एकलव्य ने मिट्टी की उस मूर्ति की ओर इशारा किया।

द्रोणाचार्य ने मिट्टी की उस मूर्ति की ओर देखकर आश्चर्य के साथ कहा—"पर यह मूर्ति तो मेरी है !"

बालक एकलव्य ने उत्तर दिया—"हाँ गुरुदेव ! यह बाण-विद्या मैंने आप से ही सीखी है।"

बालक एकलव्य ने उन्हें याद दिलाया कि वह एक दिन उनके पास बाण-विद्या सीखने गया था, पर उन्होंने अस्वीकार कर दिया था। फिर वह इस वन में उन की मिट्टी की मूर्ति

बनाकर, उन्हें अपना गुरु मानकर बाण-विद्या सीखने लगा। इसलिए वे ही उसके गुरु है।

द्रोणाचार्य प्रसन्न हो उठे। वे मन-ही-मन कुछ सोचने लगे। उन्होंने सोचकर कहा—"भद्र ! तुमने मुझसे बाण-विद्या सीखी है तो क्या मुझे गुरु-दक्षिणा न दोगे ?"

एकलव्य बोल उठा—"आज्ञा कीजिए गुरुदेव ! आप गुरु-दक्षिणा में क्या चाहते है ?"

द्रोणाचार्य ने कहा—"वत्स, मैं गुरु दक्षिणा में तुम्हारे दाहिने हाथ का अंगूठा चाहता हूँ।"

पर दाहिने हाथ का अंगूठा दे देने से तो उसकी बाण-विद्या व्यर्थ हो जाएगी। वह न तो बाण चला सकता है, न निशाना लगा सकता है। फिर क्या, वह गुरु की आज्ञा का पालन न करेगा ? नहीं, भले ही उसका सारा परिश्रम मिट्टी में मिल जाए, भले ही उस की बाण-विद्या व्यर्थ हो जाए, पर वह अपने गुरु को, उनकी दक्षिणा अवश्य देगा।

एकलव्य ने हाथ में तलवार ली। उसने तलवार से अपने दाहिने हाथ का अंगूठा काटकर द्रोणाचार्य को दे दिया।

द्रोणाचार्य का गला भर आया। उन्होंने रुँधे कण्ठ से कहा—"बेटा एकलव्य, मैं तुम्हें आर्शीवाद देता हूँ कि तुम्हारे यश की कहानी सदा धरती पर गूँजती रहेगी।"

सचमुच एकलव्य की कहानी आज भी धरती पर गूँज रही है। पर क्यों ? उसकी गुरु-भक्ति से।

यदि तुम भी अपने गुरु में श्रद्धा रखकर विद्या पढ़ो, तो तुम भी एकलव्य की तरह महान् और अमर बन सकोगे।

एक मातृ-पितृभक्त बालक

बालक सुकर्मा

हे पिता, हमारी साँसों पर,
सारा अधिकार तुम्हारा है।
तन के भीतर जो चमक रहा,
वह केवल प्यार तुम्हारा है।

बन फूल चरण पर चढ़ जाएँ,
बस, यही कामना मेरी है।
सेवा में निश-दिन जुटा रहूँ,
बस, यही प्रार्थना मेरी है।

एक बहुत बड़े ऋषि थे। ऋषि का नाम 'पिप्पल' था।
'पिप्पल' बहुत बड़े विद्वान और धर्मात्मा थे। उनका सार
मय जप, तप और पूजा-पाठ में ही व्यतीत होता था।

एक बार 'पिप्पल' के मन में तप करके, बहुत बड़ी सिवि
ाप्त करने की इच्छा पैदा हुई।

पिप्पल बन में जाकर तप करने लगे।

पिप्पल को तप करते-करते बहुत दिन बीत गए
पिप्पल के तप के प्रभाव से सारा वन स्वर्ग के समान सुन्द
हो गया। वन के पक्षी वेदों के पाठ करने लगे, वन के प
आपस में वैर-विरोध को छोड़कर प्रेम से मिल-जुलकर रह
लगे। सिंहों ने छोटे-छोटे जानवरों को मारना छोड़ दिया, साँ
और बिच्छुओं ने काटना बंद कर दिया।

पिप्पल तप में इस प्रकार लीन थे कि उन के शरीर
चारों ओर चींटियों और दीमकों ने अपने घर बना लिए
पिप्पल का शरीर मिट्टी से ढक गया। मिट्टी के ढेर से पिप्प
के शरीर का तेज ऐसा निकलता था, जैसे आग की लप
निकलती हैं।

पिप्पल की तपस्या से देवता प्रसन्न हो उठे। देवताओं
पिप्पल के सामने प्रकट होकर कहा—"मुने! तुम्हारी तपस
पूरी हुई। हम तुम्हें वरदान देते हैं कि सारा संसार ही तुम्ह
वश में हो जायेगा।"

पिप्पल हर्ष से फूल उठे क्योंकि वे जिस सिद्धि को चाह
थे, वह अब उन्हें प्राप्त हो गई थी।

पिप्पल अब अपनी सिद्धि से स्वर्ग देवता की तरह महान् हो गए थे। वे अब जिस के बारे में सोचते, वही उन के वश में हो जाता था। वे अब जो कुछ चाहते, उसे पलक मारते कर डालते थे।

पिप्पल को अपनी सिद्धि पर गर्व हो उठा। वे अपने को सबसे बड़ा तपस्वी और सबसे बड़ा धर्मात्मा मानने लगे। उन का पूजा-पाठ छूट गया। अब दिन-रात उनके मन में यही बात रहती कि ये सबसे बड़े तपस्वी हैं। उनका मुकाबिला करने वाला संसार में कोई नहीं है।

एक दिन दोपहर का समय था। पिप्पल एक नदी के किनारे-किनारे चले जा रहे थे। नदी के पानी में, एक जगह एक सारस बैठा हुआ था, अपनी चोंच से रह-रहकर पानी को उछाल रहा था।

पिप्पल जब सारस के पास पहुँचे तो उसकी चोंच से उछाली गई जल की बूंदें उनके मुख पर जा गिरीं। बस, फिर क्या था? पिप्पल क्रोध के स्वर में बोल उठे—"मूर्ख सारस, आ मेरे पैरों पर गिरकर क्षमा माँग, नहीं तो मैं तुझे जला दूंगा।"

पर सारस अपनी जगह से हिला तक नहीं। पिप्पल ने अपनी सिद्धि का सारा बल लगा दिया कि सारस उनके वश में हो जाए, पर वश में होने को कौन कहे, सारस अपनी जगह से खिसका तक नहीं।

पिप्पल आश्चर्य में डूब गए। वे आँखें फाड़कर सारस की ओर देखने लगे।

आखिर सारस बोल उठा—"पिप्पल, तुमने अवश्य बहुत बड़ा तप किया है, तुम्हें अवश्य बहुत बड़ी सिद्धि मिली है, पर तुम मूर्ख के मूर्ख ही हो।"

असल में वह सारस पक्षी नहीं, स्वयं ब्रह्माजी
के गर्व को दूर करने के लिए सारस के रूप में
हुए थे।

ब्रह्मा रूपी सारस फिर बोल उठा—"हाँ, पिप्पल
नहीं जानते। तुम अपने को सबसे बड़ा तपस्वी
पर तुम सबसे बड़े तपस्वी नहीं, सबसे बड़ा तपस्वी
का पुत्र सुकर्मा है, जो कुरुक्षेत्र में रहता है। सच
की बराबरी करने वाला संसार में कोई दूसरा तपस्

सारस अपनी बात खत्म करके अपनी
अन्तर्ध्यान हो गया।

पिप्पल आश्चर्य में डूब गए। वे सोचने लगे
पुत्र सुकर्मा। उसने ऐसा कौन-सा तप किया है
की बराबरी संसार में कोई दूसरा नहीं कर सकत
कुरुक्षेत्र जाकर उसके तप को देखेंगे।

पिप्पल कुरुक्षेत्र की ओर चल पड़े।

कुरुक्षेत्र में कुण्डल मुनि का टूटा-फूटा आश्रम
कुण्डल मुनि का ही पुत्र था। कुण्डल मुनि और
दोनों ही बूढ़े हो गए थे।

सुकर्मा की उम्र अभी केवल दस बारह वर्ष की
बड़ा ज्ञानी और तेजवान् था। वह दिन-रात अ
पिता की सेवा में लगा रहता था। वह अपने
ही अपना ईश्वर और अपनी पूजा-अर्चना समझत

प्रभात का समय था। सुकर्मा अपने माता-पित
धुलाने में लगा था। पिप्पल उसके आश्रम के
खड़े हो गए।

सुकर्मा ने उन्हें आदर से प्रणाम किया, उन्हें
आसन दिया।

पिप्पल आसन पर बैठकर सुकर्मा की ओर देखने लगे। सुकर्मा अपने पिता की सेवा में संलग्न था। पिप्पल बोल उठे—"बालक, क्या तुम्हीं सुकर्मा हो ?"

सुकर्मा ने उत्तर दिया—"हाँ मुने ! मेरा ही नाम सुकर्मा है और आप पिप्पल ऋषि हैं न ! सारस की प्रेरणा से यहाँ मेरा तप देखने आये हो।"

पिप्पल का मन आश्चर्य की लहरों में गोता खाने लगा। वे रह-रहकर सोचने लगे कि सुकर्मा को मेरा नाम और सारस की बातें कैसे मालूम हुई ? क्या यह कोई जादू जानता है।

पिप्पल को सोच-विचार में पड़ा हुआ देखकर सुकर्मा फिर बोल उठा—"मैं कोई जादू नहीं जानता। मैंने कोई जप और तप भी नहीं किया है। मेरा जप-तप तो माता-पिता की सेवा है। माता-पिता ही मेरे ईश्वर हैं। मैं सोते-जागते, खाते-पीते, दिन-रात इन्हीं का ध्यान करता हूँ। इन्हीं की सेवा से मुझे यह ज्ञान मिला है जिसे आप जादू समझ रहे है।"

पिप्पल की तपस्या का गर्व चूर-चूर हो गया। वे सुकर्मा के पैरों पर गिर पड़े। उनके मुख से निकल पड़ा—"सचमुच माता-पिता की सेवा ही सबसे बड़ा तप है।"

क दयालु बाल

बालक मूलराज

दुख से भरी कहानी सुनकर,
जिनकी आँखें भर आई थीं।
उजले-उजले सीप-पटों में,
सौ-सौ मोती भर लाई थीं।

राजपुत्र, यह मूलराज है,
गाथा बड़ी पुरानी है।
हृदय-हिमालय से निकला बना,
यह गंगा का पानी है।

बहुत दिनों की बात है, गुजरात में एक राजा राज्य क
था।

राजा का नाम भीमदेव था। भीमदेव बड़ा न्यायी अ
प्रतापी था। वह अपनी प्रजा को बहुत प्यार करता था। प्रजा
भीमदेव का बड़ा आदर करती थी।

भीमदेव का एक बालक था। बालक का नाम मूलराज थ
मूलराज था तो छोटी उम्र का, पर जब वह दूसरों के दुःख
देखता था, तो उसके हृदय में दया का सागर-सा छलक पड़
था। कभी-कभी वह नंगों और भूखों को अपनी बहुमूल्य ची
भी दे डालता था।

उन्हीं दिनों की बात है, गुजरात में जोरों का अकाल पड़ा
बाग-बगीचे सूख गए। किसानों के खेतों में पानी न बरसने
एक मुट्ठी भी अनाज नहीं पैदा हुआ। जब अनाज ही पैदा न
हुआ, तो वे राजा को लगान कहाँ से देते ?

पर राजा को तो लगान चाहिये। राजा के सिपाही गाँव
गाँव में घूम-फिरकर लगान वसूल करने लगे। पर किसा
लगान कहाँ से देते उन्हें तो खाने के लिये पेटभर अन्न भी नहीं
मिल रहा था।

राजा के सिपाही किसानों पर तरह-तरह के अत्याचार
करने लगे। उन्हें पकड़-पकड़कर जेल में डालने लगे।

एक दिन सायंकाल था। मूलराज अपने महल के पास
बगीचे में खेल रहा था।। इसी समय कुछ सिपाही, कुछ किसानों
को कैद किये हुये उधर से निकले। कैदियों में पुरुष ही नहीं,

स्त्रियाँ भी थीं, बच्चे भी थे। सब के सब उदास थे, सबकी आँखें सूनी थीं, सबके चेहरे पर दुःख नाच रहा था।

मूलराज ने बड़े ध्यान से उन कैदियों को देखा। उन कैदियों के उदास चेहरों को देखकर मूलराज के मन में दया उमड़ उठी। उसने सिपाहियों को बुलाकर पूछा—"यह लोग कौन हैं ? तुम इन्हें पकड़ कर कहाँ ले जा रहे हो ?"

सिपाहियों ने उत्तर दिया—"राजकुमार, इन सबने सरकारी लगान नहीं दिया है। इसलिए हम इन्हें पकड़कर जेल ले जा रहे हैं।"

मूलराज ने किसानों की ओर देखा। उसने किसानों की ओर से देखते ही देखते पूछा—"क्या यह सच है कि तुम सबने सरकारी लगान नहीं दिया ?"

किसानों की आँखों से आँसू गिरने लगे। स्त्रियाँ सुबक-सुबककर रोने लगी। बच्चे रह-रहकर बिलखने लगे। मूलराज फिर बोल उठा—"तुम सब क्यों रो रहे हो ? हमें बताओ, तुम सब क्यों रो रहे हो ?"

किसानों ने आँखों में आँसू भरकर कहा—"राजकुमार, हम सरकारी लगान दें तो कहाँ से दें ? पानी न बरसने से हमारे खेतों में एक मुट्ठी भी अनाज पैदा नही हुआ। हम और हमारे बाल-बच्चे भूखों मर रहे है। देखिये, खाना न मिलने से हमारे शरीर की हड्डियाँ तक निकल आई हैं।"

मूलराज आश्चर्य से किसानों की ओर देखने लगा। सच-मुच उनकी आँखें धंस गई थीं, गाल पिचक गये थे और हड्डियाँ साफ-साफ दिखाई पड़ रहीं थी।

मूलराज के हृदय में दया छलक पड़ी। उसकी आँखें सजल हो उठीं। उसने सिपाहियों को हुक्म दिया—"[illegible]।"

सिपाही करें तो अब क्या करें ? राजकुमार की आज्ञा ! विवश होकर उन किसानों को छोड़ ही देना पड़ा ।

किसान मूलराज को आशीर्वाद देते हुए चले गए। पर मूलराज के मन में एक गहरा-सा दुःख पैदा हो उठा । वह सोचने लगा—"उसके पिता के राज्य में बहुत-से किसान होंगे, जो इसी तरह दुःखी होंगे ।"

मूलराज का मन उन सभी किसानों के दुखों को सोच-सोच कर काँप उठा । उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि वह कोई ऐसा उपाय करेगा जिससे पानी न बरसने पर किसानों को लगान के लिये तंग न किया जा सके ।"

मूलराज मन-ही-मन उपाय खोजने लगा ।

मूलराज उन दिनों घुड़सवारी सीख रहा था। उसके पिता भीमदेव ने उससे कहा था कि यदि वह घुड़सवारी अच्छी तरह सीख ले तो वे उसे बहुत बड़ा इनाम देंगे ।

मूलराज ने बड़े परिश्रम से घुड़सवारी का अभ्यास किया । कुछ ही दिनों में वह घुड़सवारी में इतना चतुर हो गया कि बड़े-बड़े सिपाहियों को भी वह मात करने लगा ।

बात राजा के कानों तक भी पहुँची । राजा ने स्वयं इच्छा प्रकट की कि वह राजकुमार को घुड़सवारी के चमत्कार देखना चाहते हैं ।

आखिर एक बहुत बड़े मैदान में बड़े-बड़े शूरवीरों के सामने राजकुमार अपनी घुड़सवारी के करतब दिखाने लगा । उसने अपनी घुड़सवारी के ऐसे साहस के भरे हुए करतब दिखाये कि लोग वाह-वाह कर उठे ।

राजा के तो हर्ष की सीमा नहीं थी। उसने मूलराज को अपने पास बुलाकर उसकी पीठ ठोकते हुए कहा—"बेटा मूलराज

में तुम पर बड़ा प्रसन्न हूँ। तुम जो चाहो, मुझ से माँग सकते हो।"

मूलराज बोल उठा—"पिताजी, यदि आप मुझ पर प्रसन्न है, तो दया करके आप उन किसानों की सारी चीजें लौटा दें, लगान न देने के कारण जिन्हें आपने ज़ब्त कर लिया है।"

मूलराज की दयालुता को देखकर राजा की आँखें भर आईं। उसने बड़े ही स्नेह के साथ कहा—"बेटा मूलराज, तू अपने लिए भी कुछ माँग।"

मूलराज बोल उठा—"पिताजी, आप मुझे यह दीजिए कि अब अगर किसी साल फसल न हो तो लगान वसूल ही न की जाए, ऐसा नियम बना दें। इससे मेरे मन को बड़ा सुख होगा।"

राजा ने किसानों की चीजें तो लौटाल ही दीं, उनका लगान भी माफ़ कर दिया और आगे के लिए नियम बना दिया कि जब भी अकाल पड़ेगा लगान वसूल न की जाएगी।

गुजरात के कोने-कोने में मूलराज की जय-जयकार होने लगी, उसके यश के गीत गाये जाने लगे।

जो दूसरों के दुःख को अपना दुःख समझते हैं, वे इसी प्रकार प्रजा के प्यारे बनते हैं।

एक वीर बालक

बालक शिवाजी

जीजाबाई का लाल,
देश का सच्चा धन था।
निर्भयता के साथ,
पालता अपना प्रण था।

था दीनों का मीत,
प्रीति का प्यारा जन था।
था तन का फौलाद,
मृदुल पर उसका मन था।

लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष की बात है, महाराष्ट्र में एक बहुत बड़े वीर रहते थे। इनका नाम शाहजी था। शाहजी बड़े साहसी और देशप्रेमी थे। उन्होंने कई बड़ी-बड़ी लड़ाइयों में विजय पाई थी।

शाहजी की पत्नी का नाम जीजाबाई था। जीजाबाई बड़ी धर्मात्मा थीं। वे प्रायः पूजा-पाठ में लगी रहती थीं। 'रामायण' का पाठ उन्हें बहुत अच्छा लगता था।

१६३० ई० में शिवनेर के किले में जीजाबाई ने एक बालक को जन्म दिया। यही बालक जब बड़ा हुआ तो भारतवर्ष में शिवाजी के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

बालक शिवाजी को शुरू से ही बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं। जब वे पैदा हुए थे, तब उनके पिता के चारों ओर शत्रु ही शत्रु थे। एक बार उनके पिता के शत्रुओं ने उन्हें और उनकी माँ को शिवनेर के किले में कैद कर लेने का भी यत्न किया था, पर बालक शिवाजी, अपने सिपाहियों की मदद से किले के बाहर निकल गये।

बालक शिवाजी लगभग तीन वर्षों तक शिवनेर के किले में ही रहे। इसके बाद शत्रुओं के डर से, वे अपनी माँ के साथ, पहाड़ों और जंगलों में इधर-उधर घूमते रहे।

यद्यपि बालक शिवाजी कुछ वर्षों तक कभी एक स्थान में नहीं रहे, पर फिर भी 'जीजाबाई' ने उन्हें पढ़ाने-लिखाने और हथियार चलाने की शिक्षा देने में किसी प्रकार की कमी न की। 'जीजाबाई' बालक शिवाजी को अपने पास बिठाकर, स्वयं उन्हें 'रामायण' और 'महाभारत' की कहानियाँ सुनाया करती थी।

बालक शिवाजी को पढ़ाने-लिखाने और हथियार चलाने की शिक्षा देने के लिये चार शिक्षक नियत थे। उन शिक्षकों के

नाम थारो, भीमल, हनुमन्त और गोलाजी थे। दादा कोणदेव, जो बहुत बड़े वीर थे, बालक शिवाजी की सदा देख-रेख किया करते थे।

बालक शिवाजी के शिक्षक उन्हें पढ़ाते-लिखाते तो थे ही कुश्ती लड़ना, घुड़सवारी करना, तलवार चलाना और धनुष पर बाण चढ़ाकर निशाना आदि लगाना भी सिखाया करते थे। दादा कोणदेव बालक शिवाजी को, एक बहुत बड़ा वीर बनाने में बड़ी रुचि लेते थे।

बालक शिवाजी बड़े निडर और साहसी थे। वे अपने मावली बालक बन्धुओं के साथ प्रायः जंगलों में चले जाते थे। वहाँ राजा और प्रजा के खेल खेला करते थे। वे स्वयं राजा बनकर सिंहासन पर बैठते थे और अपने साथियों को अपना हुक्म सुनाया करते थे।

बालक शिवाजी के पिता शाहजी बीजापुर के बादशाह के दरबार में बहुत बड़े पद पर काम करते थे। वे चाहते थे कि उनका पुत्र भी बड़ा होने पर शाही दरबार में ऊँचे पद पर काम करे। इसलिए वे पहले से ही बालक शिवाजी के मन में शाही दरबार के लिए प्रेम पैदा करने के लिए यत्न किया करते थे।

एक बार शाहजी ने बालक शिवाजी को शाही दरबार दिखाने का निश्चय किया। उन्होंने सोचा शाही दरबार के ठाठ-बाट और चमक-दमक को देखकर बालक शिवाजी मोहित हो जायेंगे और [illegible] दरबारी बनने का यत्न करेंगे।

[illegible] बालक शिवाजी की उम्र केवल आठ वर्ष की [illegible] शिवाजी को दरबार का [illegible] [illegible], अपने साथ बादशाह के दरबार में ले गए।

बालक शिवाजी ने बादशाह के महल में प्रवेश किया। उन्होंने सिपाहियों के ठाठ-बाठ देखे, हाथी-घोड़े देखे। महलों की सजावटें देखीं, पर उन्होंने किसी ओर भी ध्यान नही दिया जैसे यह सारी चीजें उनके लिए नहीं के बराबर हों। वे चुप-चाप अपने पिता के पीछे-पीछे चलते गए।

शाहजी ने बादशाह के सामने आकर बड़ी नम्रता से सिर झुकाकर उसे प्रणाम किया। उन्होंने बालक शिवाजी की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"बेटा तुम भी बादशाह को सलाम करो।"

बालक शिवाजी निर्भीकता के साथ बोला उठा—"बादशाह मेरे राजा नहीं है, ये विदेशी है, मैं इनके आगे सिर नहीं झुका सकता।"

सारे दरबार में सनसनी फैल गई। बादशाह ने कड़ी निगाह से बालक शिवाजी की ओर देखा। पर फिर भी बालक शिवाजी ने अपना मस्तक बादशाह के सामने न झुकाया।

शाहजी हाथ जोड़कर बोल उठे—"श्रीमान्! अभी यह नादान है। आप क्षमा करें।"

शाहजी ने बालक शिवाजी को डाँटकर घर जाने की आज्ञा दी। बालक शिवाजी ने अपनी पीठ फेरी, वे बादशाह को बिना सलाम किये हुए अपने घर चले गये।

शाहजी जब घर लौटकर गये, तो वे बालक शिवाजी पर क्रोध प्रकट करने लगे। बालक शिवाजी ने साहस के साथ उत्तर दिया—"पिताजी, आप मुझे बादशाह के सामने क्यों ले गये थे? आप तो जानते हैं कि मेरा मस्तक तुलजा भवानी को छोड़कर और किसी के आगे नहीं झुक सकता।"

बालक शिवाजी बड़े वीर और साहसी थे।

उन दिनों बालक शिवाजी की उम्र बारह-तेरह वर्ष की थी। एक दिन वे बीजापुर के मुख्य रास्ते पर टहल रहे थे। सिर पर पाग और कमर में तलवार थी।

सहसा बालक शिवाजी ने एक ऐसे आदमी को देखा, जो एक गाय को रस्सी में बाँधकर उसे घसीटकर ले जा रहा था। गाय जाना नहीं चाहती थी, पर वह रह-रहकर उसे डंडे मार रहा था और जोर लगाकर खींच रहा था।

असल में वह कसाई था। गाय को वध करने के लिए ले जा रहा था। गाय रह-रहकर चिल्ला रही थी। रास्ते में और भी बहुत से लोग थे, जो गाय का चिल्लाना सुन रहे थे, पर किसी में गाय को छुड़ाने का साहस नहीं हुआ। सब चुपचाप खड़े-खड़े देखते रहे।

पर बालक शिवाजी की रगों में बिजली दौड़ गई। वे अपनी तलवार म्यान से निकालकर झट कसाई के पास आ पहुँचे। उन्होंने झट तलवार से गाय की रस्सी काट दी। गाय भाग खड़ी हुई। कसाई जब तक बालक शिवाजी पर हमला करे, उसके पहले ही बालक शिवाजी ने उसका भी सिर काटकर अलग कर दिया।

बीजापुर का बादशाह इस घटना से बालक शिवाजी पर बहुत अप्रसन्न हुआ। उसने उन्हें बीजापुर से बाहर निकाल दिया।

पर क्या बालक शिवाजी डरे? नहीं, वे बराबर अपने देश के लिए, अपने धर्म के लिए लड़ते रहे। वे बड़े होने पर छत्रपति शिवाजी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

तुम्हें चाहिए कि तुम शिवाजी की वीरता की कहानियाँ पढ़ो और शिवाजी बनने का यत्न करो।

एक गुणवान् बालक

बालक लिंकन

एक झोपड़ी का चिराग था,
निर्धनता का मारा था।
पर अपने अनमोल गुणों से,
उज्जवल एक सितारा था।

स्वर्ण कँगूरे पर जा बैठा,
श्रम ही एक सहारा था।
कौन भूल सकता लिंकन को,
बचपन उसका न्यारा था।

लगभग दो सौ वर्ष पहले की बात है, अमेरि
जंगली गाँव में एक मजदूर रहता था। मजदूर का न
लिकन था।

टामस लिंकन बड़ा गरीब था। बड़ी कठिनाई से
परिवार का पालन-पोषण कर पाता था। उसके प
वह, उसकी स्त्री और उसके कई लड़के और कई
थीं।

लिंकन को पढ़ने-लिखने का बड़ा चाव था। लेकि
उसका बाप उसके लिये भोजन और कपड़े का ही प्रब
कर पाता था, तब फिर भला वह उसकी पढ़ाई-लि
बन्ध कैसे कर सकता था ?

लिंकन बड़ा समझदार था। वह जानता था कि
पिता बहुत गरीब है। इसलिये वह अपने पिता से कभी
और पुस्तकों के लिये पैसे न माँगता था। वह मेहनत-
करके पैसे इकट्ठे करता था। वह भूखा रह जाता
किताबों के पैसे अवश्य बचाता था।

लिंकन को किताबें पढ़ने का बड़ा चाव था। वह
अच्छी-अच्छी किताबें माँगकर पढ़ा करता था। कभी-कभ
अच्छी किताब पढ़ने के लिये मीलों पैदल चला जाता था
व बीमार हो जाता था, तो अपनी बहिन से किताबें पढ़
ना करता था।

लिंकन को जब कभी कोई इनाम या भेंट की चीज
मिलता, तो लिंकन और कोई चीज न लेकर अच्छी किताब
पसन्द करता था।

लिकन जब
उसके शिक्षक का नाम क्राफर्ड था। क्राफर्ड महोदय बड़े दयालु और ऊँचे विचार के आदमी थे।

एक बार लिंकन ने क्राफर्ड महोदय के पास एक पुस्तक देखी। पुस्तक का नाम था 'जार्ज वाशिंगटन'। 'जार्ज वाशिंगटन' अमेरिका के एक महान् पुरुष थे। उन्होंने एक साधारण घर में जन्म लेकर बहुत उन्नति की थी। उस किताब में उन्हीं की जीवन कहानी लिखी हुई थी।

लिंकन का मन उस किताब को पढ़ने के लिये ललचा उठा। उसने 'क्राफर्ड' से प्रार्थना की—"महोदय, यदि आप कुछ समय के लिये मुझे 'जार्ज वाशिंगटन' की जीवन कहानी पढ़ने को दें, तो मैं आपका बड़ा उपकार मानूंगा।

क्राफर्ड बड़े असमंजस में पड़ गए क्योंकि वे अपनी किताबें किसी दूसरे आदमी को पढ़ने के लिये नहीं देते थे।

पर उन्हें मालूम था कि लिंकन को अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ने का बड़ा चाव है। इसलिये वे कुछ देर तक सोच-विचार कर बोले—"देखो लिंकन, मैं किसी दूसरे को अपनी किताबें नहीं देता। पर मुझे मालूम है कि तुम अच्छी पुस्तकें बड़े प्रेम से पढ़ते हो। तुम ले जाओ, पर देखो मैली-कुचैली न करना।"

लिंकन उत्साह के साथ बोल उठा—'नहीं महोदय, मैं मैली-कुचैली क्यों करूँगा? मैं उसे बड़ी सावधानी से पढ़ूँगा और फिर आपको लौटा दूँगा।"

क्राफर्ड महोदय ने 'जार्ज वाशिंगटन' की जीवन कहानी लिंकन को देदी। लिंकन बड़ा प्रसन्न हुआ। वह पुस्तक लेकर अपने घर गया।

सर्दी के दिन थे। लिंकन के माता-पिता अंगीठी के पास बैठ-

कर आग ताप रहे थे। लिंकन भी खा-पीकर अंगीठी
आ बैठा और पुस्तक पढ़ने लगा।

सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह! घर के सभी ग
गये, पर लिंकन अंगीठी के पास बैठकर किताब पढ़ना
लगभग १२ बजे लिंकन के पिता की नींद खुली। उस
लिंकन अब भी अंगीठी के पास बैठकर किताब पढ़ रहा
लिंकन का पिता बोल उठा—"अरे भाई, सोयेगा य
ही रहेगा?"

पर लिंकन पुस्तक में इतना खो गया था कि उस
पिता की बात पर ध्यान तक न दिया। वह पुस्तक पढ़
रहा और पढ़ता ही रहा।

लगभग दो बजे फिर लिंकन के पिता की नींद
उसने देखा लिंकन अब भी अंगीठी के पास बैठकर किता
रहा है।

लिंकन का पिता क्रोध के स्वर में बोल उठा—"
अभी तक पढ़ रहा है? क्या कहना न मानेगा? बीमा
का मन है क्या? किताब रखकर सो जा, नहीं तो मैं स्व
कर किताब छीन लूंगा।"

लिंकन अब करे तो क्या करे? वह किताब का पढ़न
करने के लिये विवश हो उठा। वह अंगीठी के पास से
और खिड़की पर किताब रखकर विस्तर पर जा पड़ा।

लिंकन देर तक 'जार्ज वाशिंगटन' के उन गुणों पर
विचार करता रहा जिनके कारण वह उन्नति की ऊँची चो
पर पहुँच सका था। लिंकन सोचते-ही-सोचते गाढ़ी नीं
सो गया।

सवेरे जब उसकी नींद खुली तो सबसे पहले उसका

खिड़की पर रखी हुई किताब की ओर गया। उसने किताब के पास जाकर देखा, रात को वर्षा हुई थी। पानी की बौछार से किताब गन्दी हो गई है।

लिंकन का हृदय काँप उठा। क्राफर्ड महोदय के शब्द रह-रहकर उसके कानों में गूँजने लगे—'देखो, किताब मैली-कुचैली न करना।' पर अब क्या हो सकता था ?

लिंकन उसी समय किताब लेकर चल पड़ा। वह कई मील पैदल चलकर, बिना खाये-पीये क्राफर्ड के पास पहुँचा। उसकी आँखों में आँसू और चेहरे पर लज्जा थी।

क्राफर्ड महोदय की दृष्टि उस पुस्तक पर पड़ी जो लिंकन के हाथ में थी। पुस्तक पानी की बौछार में नष्ट हो चुकी थी। क्राफर्ड महोदय का पारा गरम हो गया। उन्होंने क्रोध के स्वर में कहा—"आखिर, तुमने मेरी किताब बर्बाद ही कर दी। मैंने गलती की जो तुम्हें किताब दी। इतनी मूल्यवान किताब अब कहाँ मिलेगी ?"

लिंकन ने रुँधे हुये गले से उत्तर दिया—"महोदय, मैं लज्जित हूँ। मैं रात में पुस्तक खिड़की पर रखकर सो गया। रात में बरसात हुई और पानी की बौछार से पुस्तक नष्ट हो गई। मैं बहुत दुःखी हूँ।"

क्राफर्ड महोदय फिर गरजते हुये बोल उठे—"पर दुख से काम न चलेगा। मुझे मेरी पुस्तक देनी ही होगी।"

लिंकन ने दुःखी होकर कहा—"पर मैं आपकी पुस्तक कैसे दे सकता हूँ महोदय ! मेरे पास इतने पैसे कहाँ हैं ?

क्राफर्ड ने कहा—"पैसे नहीं है तो हाथ-पैर तो हैं।"

लिंकन बोल उठा—"आज्ञा कीजिए, फिर मैं क्या करूँ ?"

क्राफर्ड महोदय ने कहा—'तुम्हें तीन दिन तक मेरे खेतों में

घास काटनी होगी। बस मैं समझ लूँगा कि मुझे पुस्तक
मिल गई। इसके बाद पुस्तक तुम्हारी हो जाएगी।"

बस, फिर क्या था? लिंकन घास काटने में जुट ग
तीन दिन तक लगातार घास काटता रहा। नौंगे कि
वाशिंगटन की जीवन कहानी' लिंकन की अपनी पुस्तक
लिंकन इतना प्रसन्न हुआ, मानों उसे संसार का रा
गया हो।

लिंकन अपने गुणों से ही एक दिन बड़ा होने पर
का राष्ट्रपति बना। तुम भी लिंकन के गुणों को
उन्नति की ऊँची चोटी पर चढ़ सकते हो।

एक सत्यवादी बालक

बालक नेपोलियन

हो महान् बनने की इच्छा,
तो मत अपना दोष छिपाना।
अगर छिपाना ही हो कुछ तो,
अपने मन का रोष छिपाना।

'बोनापार्ट' एक बालक था,
कर देता था प्रकट बुराई।
है प्रसिद्धि सारी दुनिया में,
इसी लिए तो उसने पाई।

फांस में नैपोलियन बोनापार्ट नाम का एक महान् पुरु
हो चुका है। नैपोलियन बड़ा वीर था। उसने बड़ी-बड़ी
लड़ाइयाँ जीती थीं। नैपोलियन की वीरता के कारण आज भी
लोग बड़े आदर से उसका नाम लेते हैं।

पर नैपोलियन बड़ा सत्यवादी भी था। यहाँ हम तुम्हें
उसके बचपन की एक कहानी सुना रहे हैं, जिसमें तुम देखोगे
कि उसे सच्चाई से बड़ा प्रेम था।

एक दिन दोपहर के बाद का समय था। कार्सिका की
राजधानी के एक बगीचे में दो बालक खेल रहे थे। उनमें
एक लड़का था और दूसरी लड़की थी। दोनों आपस में भाई
बहन थे। लड़के का नाम नैपोलियन और लड़की का नाम
इलाइजा था।

इलाइजा खेल में इधर से उधर दौड़ रही थी। दूसरी
ओर से किसान की एक लड़की आ रही थी जिसके सिर पर
पके जामुनों की टोकरी थी।

अचानक इलाइजा दौड़-धूप में किसान की लड़की से टकरा
गई। उसकी टोकरी जमीन पर गिर पड़ी, सारे जामुन धूलि में
सन गये।

इलाइजा भय से काँप उठी। उसने नैपोलियन से कहा—
"भाई, चलो जल्दी भाग चलें! कोई देख लेगा कि हमसे
इसकी जामुनें गिर गई हैं तो हमें इसका नुकसान भरना
पड़ेगा।"

किसान की लड़की जोर-जोर से रो रही थी। वह सिसक

सिसककर कह रही थी—"हाय ! हाय ! इस लड़की ने मेरी जामुनें गिरा दीं। अब मैं क्या करूँ, अब मैं क्या करूँ !"

किसान की लड़की का रोना-चीखना सुनकर इलाइजा के भय से प्राण निकले जा रहे थे। वह भाग जाने के लिए तैयार खड़ी थी। पर नैपोलियन के चेहरे पर न भय और न घबराहट। वह बोल उठा—"मैं हरगिज़ न भागूंगा। देखो ये लड़की किस तरह सिसक-सिसककर रो रही है। उसका हमसे जो नुकसान हुआ है उसे हमें भर देना चाहिए। यह हमारा कर्त्तव्य है।"

नैपोलियन किसान की लड़की के पास आ पहुँचा। उसकी जामुनें बीन-बीन कर टोकरे में भरने लगा। इलाइजा अब करे तो क्या करे ? वह भी अपने भाई का साथ देने लगी।

किसान की लड़की रो-रोकर कहने लगी—"अब मैं अपनी माँ से क्या कहूँगी ? मेरी सारी जामुने मिट्टी से सन गईं। मैं इन्हें बाजार में बेचने जा रही थी। मैं इन्हें बेचकर तीन दिनों का खाना खरीदती।"

बालक नैपोलियन का हृदय दुख से भर गया। उसने लड़की को धीरज बंधाते हुए कहा—"लड़की तू रो मत ! तुम्हारा जो नुकसान हुआ है उसे हम पूरा करेंगे।"

बालक नैपोलियन के पास उस समय चाँदी के तीन छोटे-छोटे सिक्के थे। उसने तीनों सिक्के निकालकर लड़की को दे दिए और कहा—"तू हमारे साथ घर चल, बाकी हम तुम्हें और देंगे।"

इलाइजा के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। उसे ऐसा लगा, जैसा उसका भाई बहुत बड़ी भूल कर रहा हो। वह बालक नैपोलियन के कान में धीरे से बोल उठी—"भाई, यह

को देखकर उसकी बहिन पानी-पानी हो गई। वह बोल उठी—"नहीं माँ, दोष भाई का नहीं दोष मेरा है।"

और फिर उसने सच-सच बता दिया कि किस तरह वह खेलते-खेलते बगीचे के बाहर निकल गई थी, किस तरह वह किसान की लड़की से टकरा गई, किस तरह उसकी टोकरी गिर गई। किस तरह उसने भाग जाने का विचार किया और किस तरह नैपोलियन ने सच बात को प्रकट करने की दृढ़ता दिखाई। नैपोलियन की माँ, बालक नैपोलियन और इलाइजा के आपस के प्रेम और सच्चाई को देखकर प्रसन्न हो उठी। उसके मन का सारा क्रोध जाता रहा।

बालक नैपोलियन बोल उठा—"माँ, तुम महीने-महीने खर्च करने के लिए मुझे जो तीन सिक्के देती हो, क्या वह दोगी?"

नैपोलियन की माँ ने तीन सिक्के उसे देकर कहा—"अब डेढ़ महीने तक तुझे कुछ न मिलेगा।"

बालक नैपोलियन ने तीनों सिक्के किसान की लड़की को दे दिये। किसान की लड़की प्रसन्न होकर अपने घर चली गई।

बालक नैपोलियन अपनी सच्चाई और न्यायप्रियता से ही एक दिन फ्रांस का सम्राट् हुआ।

तुम भी सच्चाई और न्याय के रास्ते पर चलकर संसार में महान् बन सकते हो।

तुम क्या कर रहे हो ? इसे घर क्यों ले चल रहे हो ? यदि माँ को पता चल गया तो वह हमें दण्ड दिए बिना न मानेगी। अवश्य वह हम दोनों का खाना-पानी बंद कर देगी।"

बालक नैपोलियन ने उत्तर दिया—"तो क्या हुआ ? जब हमसे इसका नुकसान हुआ है तो हमें दण्ड भोगना ही चाहिए।"

बालक नैपोलियन उस लड़की को साथ लेकर घर जा पहुँचा। घर के भीतर प्रवेश करते ही उसकी घर की नौकरानी से भेंट हुई। नौकरानी बालक नैपोलियन के साथ अजनबी लड़की को देखकर बोल उठी—"यह कौन है ?"

बालक नैपोलियन बोल उठा—"यह एक किसान की लड़की है। इसकी जामुनें हमसे नष्ट हो गई हैं। हम इसे अपनी माँ से पैसे दिलाकर इसका नुकसान पूरा करेंगे।"

नैपोलियन की माँ 'लिटिसिया' ने नैपोलियन की बात सुन ली। वह क्रोध के स्वर में बोलती हुई निकल पड़ी—"पर मैं पूछती हूँ कि तुमसे इसकी जामुनें नष्ट कैसे हो गईं ?"

बालक नैपोलियन ने अपनी माँ को सब कुछ बता दिया, किस तरह वह खेलते-खेलते बगीचे के बाहर निकल गया था, किस तरह वह किसान की लड़की से टकरा गया और किस तरह उसके जामुनों की टोकरी जमीन पर गिर पड़ी।

बालक नैपोलियन की माँ बोल उठी—"मैंने तुम लोगों को मना किया था कि बगीचे के बाहर न जाना। अब मैं तुम दोनों का बगीचे में जाना ही बंद कर दूँगी।"

बालक नैपोलियन फिर बोल उठा—"माँ, पर इसमें इलाइजा का कुछ दोष नहीं है। सारा दोष मेरा है। तू इलाइजा को कुछ मत दण्ड दे, जो दण्ड देना हो वह मुझे ही दे।"

पर दोष तो इलाइजा का था। बालक नैपोलियन के स्नेह

को देखकर उसकी बहिन पानी-पानी हो गई। वह बोल उठी—"नहीं माँ, दोष भाई का नहीं दोष मेरा है।"

और फिर उसने सच-सच बता दिया कि किस तरह वह खेलते-खेलते बगीचे के बाहर निकल गई थी, किस तरह वह किसान की लड़की से टकरा गई, किस तरह उसकी टोकरी गिर गई। किस तरह उसने भाग जाने का विचार किया और किस तरह नैपोलियन ने सच बात को प्रकट करने की दृढ़ता दिखाई। नैपोलियन की माँ, बालक नैपोलियन और इलाइजा के आपस के प्रेम और सच्चाई को देखकर प्रसन्न हो उठी। उसके मन का सारा क्रोध जाता रहा।

बालक नैपोलियन बोल उठा—"माँ, तुम महीने-महीने खर्च करने के लिए मुझे जो तीन सिक्के देती हो, क्या वह दोगी?"

नैपोलियन की माँ ने तीन सिक्के उसे देकर कहा—"अब डेढ़ महीने तक तुझे कुछ न मिलेगा।"

बालक नैपोलियन ने तीनों सिक्के किसान की लड़की को दे दिये। किसान की लड़की प्रसन्न होकर अपने घर चली गई।

बालक नैपोलियन अपनी सच्चाई और न्यायप्रियता से ही एक दिन फ्रांस का सम्राट् हुआ।

तुम भी सच्चाई और न्याय के रास्ते पर चलकर संसार में महान् बन सकते हो।

एक धर्मप्रिय बालक
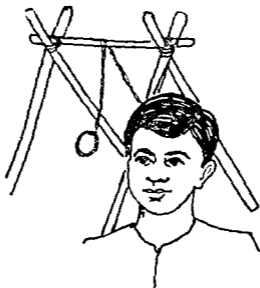
बालक हकीकतराय

तुम को धर्म तुम्हारा प्रिय है,
मुझ को धर्म हमारा प्यारा।
नाव अलग है हम दोनों की,
पर दोनों का एक किनारा।

कहो खुदा, रहमान कहो तुम,
हम तो राम नाम बोलेंगे।
मस्जिद में तुम पढ़ो नमाजें,
हम मन्दिर का पट खोलेंगे।

कई सौ वर्ष हुए स्यालकोट में एक बालक रहता था। ालक का नाम हकीकत राय था। उसकी उम्र कुल बारह-ारह वर्ष की थी।

उन दिनों भारत में मुसलमानों का राज्य था। उन दिनों आज की तरह स्कूल और कालेज न थे। जगह-जगह छोटी-छोटी पाठशालाएँ थीं, जिसमें मौलवी पढ़ाया करते थे।

स्यालकोट की एक ऐसी ही पाठशाला में बालक हकीकत राय पढ़ा करता था।

एक दिन दोपहर का समय था। मौलवी साहब नमाज़ पढ़ने के लिए मस्जिद में चले गए थे। कुछ शरारती लड़कों ने हकीकत से छेड़-छाड़ शुरू कर दी। पहले तो उन्होंने हकीकत को बुरा-भला कहा, फिर वे हिन्दु देवी-देवताओं को गालियाँ देने लगे।

हकीकत चुप न रह सका। वह बोला उठा—"भाई, तुम सब हमारे देवी-देवताओं को गाली क्यों देते हो? जिस तरह तुम्हारे देवी-देवता तुम्हें प्यारे हैं उसी तरह हमारे देवी-देवता हमें प्यारे है।"

पर वे लड़के तो दुष्ट स्वभाव के थे। वे हकीकत की बात पर हँस पड़े और हिन्दु देवी-देवताओं को और भी बुरी-बुरी गालियाँ देने लगे।

हकीकत की रगों में जोश दौड़ उठा। उसने कहा—"यदि मैं तुम्हारे देवी-देवताओं के लिए भी इन्हीं शब्दों का प्रयोग करूँ तो।"

और बालक हकीकत ने, बदले में मुसलमान देवी-देवताओं के लिए भी उसी तरह के कुछ शब्द मुँह से निकाल दिये।

बस फिर क्या था ? दुष्ट लड़के आपे से बाहर हो गए पर उसी समय मौलवी साहब आ गए। दुष्ट लड़कों ने नमक मिर्च लगाकर मौलवी साहब से कहा—"मौलवी साहब, हकीकत ने मुसलमान देवी-देवताओं को बुरी-बुरी गालियाँ दी हैं।"

बालक हकीकत ने अपनी बड़ी सफाई दी कि उसने ऐसा कुछ नहीं कहा, पर मौलवी साहब ने उसकी बात पर विश्वास न किया। वे स्वयं भी हकीकत पर क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने कहा, "तुमने मुसलमान देवी-देवताओं को गालियाँ देकर मुसलमानी धर्म का अपमान किया है। इसलिए तुम्हें सज़ा मिलेगी।"

मौलवी साहब ने हकीकत के मामले को स्यालकोट के हाकिम की अदालत में भेज दिया। हाकिम का नाम अमीर बेग था।

बालक हकीकत अदालत में हाज़िर हुआ। हाकिम ने जब हकीकत से पूछा कि क्या उसने मुसलमान देवी-देवताओं को गालियाँ दी हैं तो उसने उत्तर दिया कि उसने जो कुछ भी कहा है, उन दुष्ट लड़कों के उत्तर में कहा है।

पर हाकिम के लिए तो इतना ही काफी था। उसने मौलवियों से सलाह लेकर हकीकत को मौत की सज़ा देदी।

हकीकत के घर में, उसका बूढ़ा बाप और उसकी माँ थी। हकीकत का विवाह भी हो चुका था। पर उसकी पत्नी अभी अपने बाप के ही घर थी। अभी तक उसे हकीकत का मुँह भी देखने को नहीं मिला था।

हकीकत के माँ-बाप और उसकी ससुराल के सभी लोग [illegible]ीटने लगे। सबने हाकिम से बड़ी अनुनय विनय की कि

ाह हकीकत को क्षमा कर दें पर हाकिम टस से मस नहीं ;आ। आखिर हकीकत के पिता ने लाहौर की बड़ी अदालत में अपील की पर वहाँ से भी मौत की सजा कायम रही।

बालक हकीकत जेल में बंद कर दिया गया। वह उस घड़ी की प्रतीक्षा करने लगा जब वह अपने धर्म से प्रेम करने के कारण सूली पर चढ़ा दिया जाएगा।

एक दिन दोपहर का समय था। बालक हकीकत जेल के सीखचों के भीतर बड़ी निश्चितता से बैठा हुआ था। सहसा सीखचों के बाहर से कोई बोल उठा—"हकीकत!"

हकीकत ने सिर उठाकर देखा सामने लाहौर का काजी, उसके पिता के साथ खड़ा था।

हकीकत उठकर खड़ा हो गया। वह सीखचों के पास आया। उसने अपने पिता को दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया। पिता आशीर्वाद भी न दे सका, क्योंकि उसकी आँखों में आँसू थे और गला रुँधा हुआ था।

काजी बोल उठा—"हकीकत! यदि तुम चाहो तो मौत की सजा से बच सकते हो।"

बालक हकीकत ने आश्चर्य के साथ काजी की ओर देखा। काजी फिर बोल उठा—"हाँ हकीकत, तुम मौत की सजा से छुट-कारा पा सकते हो और इसके लिए एक ही उपाय है कि तुम मुसलमान बन जाओ।"

बालक हकीकत जब तक कुछ उत्तर दे, उसके पहले ही उस का पिता बोल उठा—"हर्ज क्या है बेटा, तू मुसलमान हो जा, मुसलमान होने से तुम्हारे प्राण तो बच जाएँगे।"

बालक हकीकत के चेहरे पर शक्ति और साहस की एक ज्योति सी दौड़ गई। वह बोल उठा—"यह आप कह रहे हैं

पिताजी ! मुझे दुःख है कि आप मेरे पिता हैं ! सुन लीजिए कान खोलकर, मैं मर जाऊँगा, सूली पर चढ़ जाऊँगा, पर अपने धर्म को कभी न छोड़ूंगा।"

काजी फिर बोल उठा—"नादान न बनो हकीकत ! मुसलमान होने पर तुम्हारे प्राण तो बच ही जाएँगे, तुम्हें बहुत अधिक धन भी मिलेगा।"

बालक हकीकत हँस पड़ा। उसने हँसते हुए कहा—"काजी साहब, मैं हिन्दु हूँ। हिन्दु न अपना धर्म छोड़ता है न दूसरों को अपना धर्म छोड़ने के लिए लाचार करता है। आप मुझे धन क्या, सारी दुनिया का राज भी दे दें, तो भी मैं अपना धर्म और ईमान नहीं छोड़ सकता।"

आखिर, काजी निराश हो गया। बालक हकीकत ने अपना सिर हंसते-हंसते कटा दिया, पर उसने अपने धर्म और ईमान को न छोड़ा। धर्म और ईमान पर अटल रहने ही के कारण आज भी लोग बड़ी श्रद्धा से बालक हकीकत का नाम लेते हैं।

तुम्हें भी बालक हकीकत की तरह अपने धर्म और ईमान पर दृढ़ रहना चाहिये।

एक मेधावी बालक

बालक ईश्वरचन्द्र

पढ़कर गड़े मील के पत्थर,
जिसने गिनती सारी पढ़ ली ।
बनकर स्वयं विधाता जिसने,
श्रम से किस्मत अपनी गढ़ ली ।
बालक 'ईश्वरचन्द्र' वही तो,
विद्या का सागर कहलाया ।
कोटि-कोटि मनुजों में उसने,
देवों का सा आदर पाया ।

एक बालक था। बालक का नाम ईश्वरचन्द्र था।
उसकी बहुत कम थी, पर बुद्धि बड़ी तेज थी। उसकी तेज
पर बड़े-बड़े लोगों को भी आश्चर्य होता था।

एक दिन ईश्वरचन्द्र अपने पिता के साथ पैदल ही कल
जा रहा था। बालक ईश्वरचन्द्र ने पक्की सड़क पर देखा
"थोड़ी-थोड़ी दूर पर पत्थर का छोटा-सा लम्बा टुकड़ा गड़ा
और उस पर कुछ लिखा है।"

बालक ईश्वरचन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने अ
पिताजी से पूछा—"पिताजी यह पत्थर क्यों गड़ा है ?"

पिता ने उत्तर दिया—"यह पत्थर मील का है बेटा
सड़क पर एक-एक मील पर गाड़ा गया है। इससे यह प
चलता है कि कौन सी जगह किस जगह से कितने मी
दूर है।"

बालक ईश्वरचन्द्र मील के एक पत्थर के पास पहुँचक
खड़ा हो गया। उसने पत्थर की ओर इशारा करते हुए फि
पूछा—"पिताजी, इस पत्थर पर क्या लिखा है ?"

पिता ने उत्तर दिया—"इस पर अंग्रेजी का अंक लिखा है
बेटा। इस पर जो अंक लिखा है, उसे '19' कहते हैं। इस क
तात्पर्य यह है कि कलकत्ता यहाँ से उन्नीस मील दूर है।"

बालक ईश्वरचन्द्र ने बड़े ध्यान से अंग्रेजी के '19' अंक को
देखा। उसने अपने पिताजी से फिर प्रश्न किया—"पिताजी,
क्या अंग्रेजी में 19 की गिनती इसी प्रकार लिखी जाती है?"

पिता ने उत्तर दिया—"हाँ बेटा, अंग्रेजी में 19 की गिनती
ी प्रकार लिखी जाती है।"

बालक ईश्वरचन्द्र मन ही मन कुछ सोचकर चुप हो गया। वह अपने पिता के साथ-साथ कलकत्ते की ओर चलने लगा। सड़क पर जहाँ भी कहीं मील का पत्थर पड़ता, वह खड़ा हो जाता और उस पर लिखे हुए अंक को बड़े ध्यान से देखता।

इस प्रकार बालक ईश्वरचन्द्र ने कलकत्ता पहुँचते-पहुँचते '10' के नीचे के सभी अंकों को बड़े ध्यान से देखा और देख कर उन्हें पहचान लिया।

बालक ईश्वरचन्द्र जब कलकत्ता पहुँचा तब उसने हर्ष के साथ अपने पिता से कहा—"पिताजी, मैंने अंग्रेज़ी की गिनती जान ली।"

पिता को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने उत्कण्ठा के साथ पूछा—"पर तुम्हें अंग्रेज़ी की गिनती किसने और कब सिखाई ?"

बालक ईश्वरचन्द्र ने उत्तर दिया—"पिताजी, मील के पत्थरों पर अंग्रेज़ी के अंक लिखे थे न ! मैंने उन्हीं को देख-देख कर अंग्रेज़ी के सारे अंक समझ लिये।"

पर पिता को विश्वास न हुआ। उन्होंने बालक ईश्वरचन्द्र की परीक्षा ली। उन्होंने बालक के सामने अंग्रेज़ी के अंक—5784 आदि लिखकर पूछे—"बताओ यह कौन से अंक है ?"

बालक ईश्वरचन्द्र ने झट बता दिये—"पाँच, सात, आठ और चार।

पिता के हर्ष की सीमा न रही। उनकी आँखों में हर्ष और आनन्द के आँसू उमड़ आए। उन्होंने अपने बुद्धिमान् बालक को पकड़कर अपने हृदय से लगा लिया।

वही बालक ईश्वरचन्द्र जब बड़ा हुआ, तब ईश्वरचन्द्र

विद्यासागर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ईश्वरचन्द्र विद्यासाग
आज इस संसार में नहीं हैं, पर आज भी लोग उनके नाम व
बड़े आदर से लेते हैं।

क्या तुम बता सकते हो कि ईश्वरचन्द्र को लो
'विद्यासागर' क्यों कहते हैं ? इसलिए कि वे सचमुच विद्या वे
सागर थे, बहुत बड़े विद्वान् थे। उनकी विद्वता पर ही प्रसन्
होकर लोगों ने उन्हें 'विद्यासागर' की पदवी दी थी।

तुम समझ सकते होगे कि विद्यासागर बहुत बड़े अमीर
के लड़के रहे होंगे। उन्हें पढ़ने-लिखने के लिए अच्छी-से-अच्छी
सुविधाएँ मिली होंगी। पर तुम्हें यह जानकर आश्चर्य ही होगा
कि ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का जन्म एक बहुत बड़े गरीब के घर
में हुआ था। उन के पिता एक गाँव में रहते थे और बड़े कष्ट
के साथ जीवन बिताते थे।

पर बालक ईश्वरचन्द्र के मन में पढ़ने-लिखने का बड़ा चाव
था। उनकी बुद्धि बड़ी तेज थी। वे बहुत-ही सादे चाल-ढाल से
रहते थे। उनके पिता उन्हें बहुत थोड़े से पैसे देते थे, पर वे
उन्हीं पैसों से खाते-पीते और पढ़ाई का खर्च चला लेते थे।
जब उनके पास पैसे न होते थे, वे भूखे सो जाते थे।

नीचे की कहानी में तुम देखोगे कि बालक ईश्वरचन्द्र ने
किस तरह कष्ट उठाकर विद्या पढ़ी थी।

बालक ईश्वरचन्द्र उन दिनों कलकत्ते में पढ़ रहा था।

जाड़े के दिन थे। बालक ईश्वरचन्द्र के पैसे खत्म हो चुके
थे। महीने में तीन-चार दिन और बाकी थे। आशा थी कि
महीना खत्म होने पर पिताजी पैसे भेजेंगे।

पर ये तीन-चार दिन किस तरह बीतें ? बालक ईश्वरचन्द्र
ने निश्चय किया कि वह तीन-चार दिनों तक भूखा रहेगा।

पर उन्हीं दिनों उसे एक इम्तिहान की तैयारी भी करनी थी। पर क्या वह भूखा रहकर अपने इम्तिहान की तैयारी कर सकेगा।

बालक ईश्वरचन्द्र ने चौबीस घंटे भूखे रहकर काट दिए। एक तो जाड़े के दिन, दूसरे भूखा और तीसरे इम्तिहान की तैयारी! बालक ईश्वरचन्द्र को ज्वर हो आया। पर फिर भी बालक ईश्वरचन्द्र ने स्कूल जाना न छोड़ा।

कक्षा में बालक ईश्वरचन्द्र बैठकर पढ़ रहा था। रह-रहकर उसका शरीर कांप उठता था। सहसा शिक्षक महोदय की दृष्टि बालक ईश्वरचन्द्र पर पड़ी। शिक्षक महोदय बालक ईश्वरचन्द्र की सादगी और सरलता का बड़ा आदर करते थे।

शिक्षक महोदय स्वयं बालक ईश्वरचन्द्र के पास गये। उन्होंने उसके शरीर पर हाथ रखा, तो वह गरम! वे ईश्वर चन्द्र को उसी समय अपने घर ले गए। उन्होंने उसकी दवा का प्रबन्ध किया। ईश्वरचन्द्र ने जब उन्हें अपना हाल बताया; तब उनकी आँखों में आँसू आ गए।

बालक ईश्वरचन्द्र ने भूखा रह-रहकर विद्या पढ़ी। उसे इम्तिहान में कई बार इतने अधिक नंबर मिले कि सरकार ने प्रसन्न होकर उसे वज़ीफे प्रदान किए।

बालक ईश्वरचन्द्र अपने श्रम और सादगी से ही 'विद्यासागर' हुआ था। तुम्हें भी ईश्वरचन्द्र की भाँति ही विद्या पढ़नी चाहिए और 'विद्यासागर' की उपाधि प्राप्त करनी चाहिए।

विद्यासागर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ईश्वरचन्द्र विद्यासा
आज इस संसार में नहीं हैं, पर आज भी लोग उनके नाम
बड़े आदर से लेते हैं।

क्या तुम बता सकते हो कि ईश्वरचन्द्र को लो
'विद्यासागर' क्यों कहते हैं? इसलिए कि वे सचमुच विद्या
सागर थे, बहुत बड़े विद्वान् थे। उनकी विद्वता पर ही प्रसन्
होकर लोगों ने उन्हें 'विद्यासागर' की पदवी दी थी।

तुम शायद समझते होंगे कि विद्यासागर बहुत बड़े अमी
के लड़के रहे होंगे। उन्हें पढ़ने-लिखने के लिए अच्छी-से-अच्छी
सुविधाएँ मिली होंगी। पर तुम्हें यह जानकर आश्चर्य ही होगा
कि ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का जन्म एक बहुत बड़े गरीब के घर
में हुआ था। उन के पिता एक गाँव में रहते थे और बड़े कष्ट
के साथ जीवन बिताते थे।

पर बालक ईश्वरचन्द्र के मन में पढ़ने-लिखने का बड़ा चाव
था। उनकी बुद्धि बड़ी तेज थी। वे बहुत-ही सादे चाल-ढाल से
रहते थे। उनके पिता उन्हें बहुत थोड़े से पैसे देते थे, पर वे
उन्हीं पैसों से खाते-पीते और पढ़ाई का खर्च चला लेते थे।
जब उनके पास पैसे न होते थे, वे भूखे सो जाते थे।

नीचे की कहानी में तुम देखोगे कि बालक ईश्वरचन्द्र ने
किस तरह कष्ट उठाकर विद्या पढ़ी थी।

बालक ईश्वरचन्द्र उन दिनों कलकत्ते में पढ़ रहा था।

जाड़े के दिन थे। बालक ईश्वरचन्द्र के पैसे खत्म हो चुके
थे। महीने में तीन-चार दिन और बाकी थे। आशा थी कि
महीना खत्म होने पर पिताजी पैसे भेजेंगे।

पर ये तीन-चार दिन किस तरह बीतें? बालक ईश्वरचन्द्र
ने निश्चय किया कि वह तीन-चार दिनों तक भूखा रहेगा।

पर उन्हीं दिनों उसे एक इम्तिहान की तैयारी भी करनी थी। पर क्या वह भूखा रहकर अपने इम्तिहान की तैयारी कर सकेगा।

बालक ईश्वरचन्द्र ने चौबीस घंटे भूखे रहकर काट दिए। एक तो जाड़े के दिन, दूसरे भूखा और तीसरे इम्तिहान की तैयारी ! बालक ईश्वरचन्द्र को ज्वर हो आया। पर फिर भी बालक ईश्वरचन्द्र ने स्कूल जाना न छोड़ा।

कक्षा में बालक ईश्वरचन्द्र बैठकर पढ़ रहा था। रह-रहकर उसका शरीर काँप उठता था। सहसा शिक्षक महोदय की दृष्टि बालक ईश्वरचन्द्र पर पड़ी। शिक्षक महोदय बालक ईश्वरचन्द्र की सादगी और सरलता का बड़ा आदर करते थे।

शिक्षक महोदय स्वयं बालक ईश्वरचन्द्र के पास गये। उन्होंने उसके शरीर पर हाथ रखा, तो वह गरम ! वे ईश्वरचन्द्र को उसी समय अपने घर ले गए। उन्होंने उसकी दवा का प्रबन्ध किया। ईश्वरचन्द्र ने जब उन्हें अपना हाल बताया; तब उनकी आँखों में आँसू आ गए।

बालक ईश्वरचन्द्र ने भूखा रह-रहकर विद्या पढ़ी। उसे इम्तिहान में कई बार इतने अधिक नंबर मिले कि सरकार ने प्रसन्न होकर उसे वजीफे प्रदान किए।

बालक ईश्वरचन्द्र अपने श्रम और सादगी से ही 'विद्या-सागर' बना था। तुम्हें भी ईश्वरचन्द्र की भाँ

एक ईमानदार बालक

बालक महादेव गोविन्द रानाडे

शोभा मानव के जीवन की,
है ईमान और सच्चाई।
स्वयं उठा करके दुख करना,
है दुखियों की मौन भलाई।

इतिहास बाल रानाडे को,
क्या भूल कभी भी सकता है?
तुलना में नाम दूसरे का,
क्या ढूंढ़ और रख सकता है?

एक बालक था। बालक ब्राह्मण था। उसके पिता कोल्हा-पुर में रहते थे।

उन दिनों कोल्हापुर में यह रीति थी कि लोग पूर्णिमा के दिन बड़े आदर से ब्राह्मणों को अपने घर पर बुलाते थे और उन्हें दूध पिलाते थे।

बहुत से लोग स्कूल के बालकों को भी बुलाते थे और उन का आदर-सत्कार करते थे।

उस दिन स्कूलों में छुट्टी रहती थी। स्कूलों के लड़के जगह जगह इकट्ठे होते और चौपड़ खेला करते थे।

एक बार पूर्णिमा का दिन था। स्कूल में छुट्टी थी। सभी लड़के एक-दूसरे के घर चौपड़ खेलने के लिये गए। पर शाम हो गई और उस बालक के घर चौपड़ खेलने के लिये कोई न आया। बालक बड़ी देर तक उदास बैठा रहा। जब उस से न रहा गया, तब वह अपनी फूफी के पास गया। उसने अपनी फूफी से कहा—"फूफी चौपड़ निकाल दे, मैं खेलूंगा।"

फूफी ने आश्चर्य के साथ कहा—"पर तू खेलेगा किसके साथ? कोई दूसरा बालक तो खेलने आया नहीं और दुर्गा (बालक की बहिन का नाम था) सो गई है।"

'बालक' ने उत्तर दिया—"कुछ भी हो फूफी, तू चौपड़ निकाल दे! मैं खेलूंगा।"

फूफी ने चौपड़ लाकर बालक को दे दिया। बालक चौपड़ को लेकर दालान में गया, और एक खंभे के पास बैठ गया। पीछे-पीछे फूफी भी खंभे के पास जा पहुँची और खंभे की ओट

में खड़ी होकर यह देखने लगी कि देखें यह किसके साथ खेलता है।

'वालक' खंभे के पास चौपड़ बिछाकर अपने आप ही वोल उठा—"भाई खंभे, आज मेरे साथ चौपड़ खेलने के लिये कोई दूसरा लड़का नहीं आया। इस लिये, आओ आज तुम्हीं मेरे साथ खेलो। खेल में दाहिने हाथ की चाल तुम्हारी और वायें हाथ की हमारी होगी।"

खंभा जवाव ही क्या दे सकता था? पर 'वालक' तो अपनी धुन में मग्न था। वह दाएँ-वाएँ-दोनों हाथों से चाल चलने लगा। अरे, यह क्या? यह तो दाएँ हाथ ने वाएँ हाथ को दो वार हरा दिया।

'वालक' की फूफी, जो खंभे की ओट में छिपकर देख रही थी, झट वोल उठी—"राम, राम आज तू निर्जीव खंभे से हार गया!"

पर फूफी की इस वात से वालक के मन में तनिक भी खीझ न पैदा हुई। उसने बड़ी गंभीरता के साथ उत्तर दिया—"हाँ फूफी, आज मैं सचमुच पत्थर के वेजान खंभे से हार गया। इसका कारण यह है फूफी कि, मुझे वाएँ हाथ से खेलने का विल्कुल अभ्यास नहीं है।"

फूफी ने कहा—"तो तुम ने ऐसा क्यों किया? जब तुम जानते थे कि तुम्हें वाएँ हाथ से खेलने का अभ्यास नहीं है, तव तुमने खेल में दाहिने हाथ की चाल अपनी और वाएँ हाथ की चाल खंभे की क्यों नहीं मानी?"

वालक ने उत्तर दिया—"यह अन्याय होता फूफी! तुम जानती हो पत्थर का खंभा वोल नहीं सकता। ऐसी हालत में यदि मैं वाएँ हाथ की चाल उसको मानता तो यह मेरी वेईमानी

होती। मैं पत्थर के खंभे से हार अवश्य गया हूँ, पर यह तो कोई नहीं कह सकता कि मैंने बेईमानी की।"

बालक का इतना कहना था कि उसकी फूफी ने दौड़कर उसे अपने हृदय से लगा लिया। प्यार की वाणी में उसके मुख से निकल पड़ा—"मेरे गोबिन्द मेरे रानाडे।"

वही ईमानदार बालक जब बड़ा हुआ, तो भारत में महादेव गोविन्द रानाडे के नाम से प्रसिद्ध हुआ। महादेव गोविन्द रानाडे बड़े सत्य निष्ठ और बड़े ईमानदार थे। वे ऊँचे पद पर काम करते थे, पर बड़े सादे चाल-ढाल से रहते थे। ईमानदारी और सादगी के लिए, भारत के लोग सदा महादेव गोबिन्द रानाडे को याद करेंगे।

गोविन्द रानाडे के बचपन की ही एक दूसरी कहानी सुनो। इस कहानी में भी तुम्हें बालक रानाडे का एक अनोखा गुण मिलेगा।

बात उन दिनों की है, जब रानाडे बम्बई में पढ़ रहे थे। रानाडे जिस मकान में रहते थे, उसके पड़ोस में ही एक स्त्री रहती थी। स्त्री कभी बहुत बड़ी अमीर थी। पर दुर्भाग्य से उसका सारा धन जाता रहा। वह अब बड़ी कठिनाई से अपना और अपने लड़के का निर्वाह कर रही थी।

यह स्त्री जब अपने घर में अकेली होती, तो अपने आप ही ऊँची आवाज में बार-बार कहती—"मेरी जीभ बड़ी चटोरी हो गई है। मैं इसे बहुत समझाती हूँ कि अब चार-छः साग मिलने के दिन गये, मिठाइयाँ अब दुर्लभ हैं और पकवानों की याद करने से कोई लाभ नहीं। पर, यह मानती ही नहीं। मेरा बेटा रूखी-सूखी खाकर पेट भर लेता है, किन्तु बिना दो-तीन साग के मेरा पेट नहीं भरता।"

रानाडे के कानों में उस स्त्री की आवाज प्रायः पड़ा करती

थी। रानाडे ने उस की बातों से एक बहुत बड़ी सीख ली। जानते हो वह सीख क्या थी ? तुम भी सुनो—"जीवन में सभी दिन एक समान नहीं होते। कभी चढ़ाव होता है, तो कभी उतार होता है। इसलिए आदमी को चाहिए कि वह अपनी जीभ को बहकने न दे। सादा भोजन और सदा कपड़ा, जो सभी दिनों सरलता से मिल सके, आदमी को ग्रहण करना चाहिये।"

बालक रानाडे ने, बड़ा होने पर सदा सच्चाई, ईमानदारी और सादगी से ही अपना जीवन व्यतीत किया। ऊँचे पद पर होने पर भी रानाडे सदा सादा भोजन ग्रहण किया करते थे। वे खाने-पीने में बड़े संयम से काम लेते थे।

एक बार रानाडे के एक मित्र ने उनके लिये कुछ आम भेजे। रानाडे की पत्नी रमाबाई ने आम काटकर रानाडे के सामने रख दिये। रानाडे ने आम के दो-एक टुकड़े खाकर कहा—"सचमुच आम, बड़े मीठे हैं। लो तुम भी खा लो, और नौकरों को दे दो।"

रानाडे की स्त्री को आश्चर्य हुआ। वे बोल उठीं—"आम मीठे थे तो आपने केवल एक दो टुकड़े ही क्यों लिये ?"

रानाडे ने उत्तर दिया—"आम मीठे हैं, इसीलिये तो मैंने एक-दो टुकड़े लिये हैं। तुम्हें यह भूल नहीं जाना चाहिए कि, अच्छी चीजें अधिक खाने से जीभ खराब हो जाती है। कौन जाने, आज अच्छी चीजें मिल रही हैं, कभी न मिलें।"

रानाडे अपने गुणों से ही महान् बने। यदि तुम रानाडे की तरह महान् बनना चाहते हो तो तुम्हें भी उन्हीं की तरह ईमानदारी, सचाई और सादगी से जीवन बिताना चाहिए

एक वैज्ञानिक वालक

बालक जगदीश चन्द्र

जान पेड़-पौधों में
बहुत दिनों से सुनता :
पर इसको जगदीश
साबित कर प्रत्यक्ष दिखाया ।

होनहार बचपन उनका था,
बातें बड़ी निराली-सी थीं ।
कुन्दन-बदन पर बिछी हुई थी,
नव प्रभात की लाली-सी थी ।

एक बालक था। बालक के पिता का नाम भगवानचन्द्र वसु था। भगवानचन्द्र वसु, फरीदपुर में डिप्टी मजिस्ट्रेट थे। उन दिनों फरीदपुर (बंगाल में) के आस-पास के गाँवों में चारों ओर डाकुओं का बहुत बड़ा आतंक फैल हुआ था।

एक बार भगवान चन्द्र ने हाथी पर चढ़कर, डाकुओं के कैम्प पर हमला किया। सभी डाकू भाग खड़े हुए, पर मुखिया पकड़ लिया गया। उस पर मुकदमा चला। भगवान चन्द्र ने उसे कुछ वर्षों की सजा दी। जब वह जेल जाने लगा, तब उसने भगवान चन्द्र को धमका कर कहा—"जेल से छूटने पर मैं तुमसे अवश्य बदला लूँगा।"

और सचमुच चार-पाँच वर्षों के बाद उसने बदला लिया, बहुत बड़ा बदला लिया। एक दिन रात में जब भगवान च बसु अपने परिवार के साथ बँगले में सो रहे थे, डाकुओं ने उ बँगले में आग लगा दी।

किसी आदमी की जान तो नहीं गई, पर सारा बंगला ज कर राख हो गया। सोने-चाँदी के बर्तन जलकर भस्म गये। भगवान चन्द्र को बड़ी ग्लानि हुई, पर वश क्या था?

दो-तीन वर्षों के बाद, डाकुओं का वही मुखिया फिर पकड़ गया। पर इस बार उसके भाव बदले हुए थे। उसने भगवा चन्द्र से विनती करके कहा—"यदि उसे कोई नौकरी मि जाय, तो वह इस बुरे काम को छोड़ सकता है।"

भगवान चन्द्र वसु को उस पर दया आ गई। उन्होंने उसे अपने यहाँ नौकर रख लिया। उन्होंने उसे नौकर रखते हुए कहा—"तुम प्रतिदित मेरे लड़के को स्कूल ले जाओ और छुट्टी होने पर, फिर उसे अपने साथ लेकर घर आओ।"

इस प्रकार वह बालक, जिसकी कहानी हम यहाँ लिख रहे हैं, प्रतिदिन डाकू के साथ स्कूल जाता और आता था।

ाकू बालक को समय-समय पर अपने डाकू जीवन की कहा-
ियाँ सुनाया करता था। वह बालक को बताता कि किस तरह
ह अपने साथियों के साथ रात में मशालें जलाकर गाँवों पर
मला करता, किस तरह लोगों के घरों में आग लगाता, किस
रह लोगों को वह लूटता और किस तरह छोटे-छोटे बच्चों
ौर स्त्रियों को छोड़कर लोगों की जानें लिया करता था।

डाकू की कहानियों ने 'बालक' की रगों में एक नया जीवन
दा कर दिया। उसके मन के भीतर उत्साह और साहस की
ाहरें पैदा हो उठीं। वह एक प्रकार से बिल्कुल निडर-सा हो
गया। इतना निडर हो गया कि उसे अपने प्राणों की भी चिन्ता
ाहीं रहती थी।

बरसात का दिन था। एक दिन बालक अपनी बड़ी बहिन
के साथ पुल पर खेल रहा था। अचानक उसकी दृष्टि नाले के
ाहते हुए पानी पर पड़ी। उसने देखा, एक साँप किनारे से
चिपका हुआ है, जिसे पानी की तेज धारा अपने साथ बहा ले
जाने की कोशिश कर रही है। बालक ने दौड़कर, साँप को
अपने हाथ में उठा लिया।

बालक की बहिन देखकर चिल्ला उठी—"फेंक दो भैया,
इसे फेंक दो, नहीं तो यह काट लेगा।"

पर निर्भीक बालक साँप से कैसे डर सकता था? वह साँप
को लेकर अपनी बहिन के पास पहुँचा। बेचारी बहिन भाग
खड़ी हुई और बालक ने उस साँप को नचाकर फिर नाले के
पानी में फेंक दिया।

बालक को साहसपूर्ण कहानियाँ सुनने का बड़ा चाव था।
वह जब किसी ऐसे आदमी से मिलता जिसके द्वारा कोई साह-
सिक कार्य हुआ रहता था, तो वह खोद-खोदकर उससे उसकी

साहस की बातों को पूछा करता था। साहस की बातों को पूछने और जानने में वह लोक-व्यवहार को भी भूल जाता था।

एक बार बालक की एक ऐसे आदमी पर दृष्टि पड़ी, जो डाक्टर के पास अपने पैर के जख्म पर मरहम पट्टी करवा रहा था। बस फिर क्या ? मौका मिलते ही बालक उस आदमी के पास जा पहुँचा। बालक ने उस आदमी से पूछा—"क्यों भाई, तुम्हें क्या हुआ है ?"

आदमी ने उत्तर दिया—"बाघ ने हमला किया था।"

बस फिर क्या ? बालक ने उससे प्रश्न पर प्रश्न करने आरम्भ कर दिए—"बाघ ने तुम पर कैसे हमला किया ? उसके दाँत और पंजे किस तरह के होते हैं ? तुम उससे किस तरह बचे ? वह तुम्हें छोड़कर क्यों भाग गया ?"

बालक जब भी कोई नई बात देखता, तो इसी प्रकार लोगों से प्रश्नों की झड़ी लगा दिया करता था। किसी बात को जानने और समझने की उसके भीतर अद्भुत उत्कंठा छिपी हुई थी।

एक बार बालक ने देखा कि जंगल जल रहा है और पतंगे दौड़-दौड़कर जलती हुई आग में गिर रहे हैं ? बस, फिर क्या ? उसके मन में सवाल पैदा हो उठा कि आग क्यों जलती है और पतंगे आग में क्यों कूदते हैं।

बालक बड़ी देर तक मन ही मन अपने इस सवाल का उत्तर खोजता रहा, पर उत्तर न मिला।

रात को भी बालक के मन में यह सवाल बड़ी देर तक चक्कर काटता रहा। जब किसी प्रकार बालक को शान्ति न मिली तो उसने अपने पिता को जगाया। उस समय रात के एक बज रहे थे। उसने अपने पिता से पूछा—"बाबा, बताइए, जंगल

में आग क्यों लगती है, और पतंगे जान-बूझकर आग में क्यों कूदते हैं ?"

क्या तुम जानते हो कि बचपन में इस प्रकार के प्रश्नों की झड़ी लगाने वाला बालक कौन है ? सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री जगदीश चन्द्र बसु। श्री जगदीश चन्द्र बसु ने संसार के वैज्ञानिकों में भारत के मस्तक को ऊँचा किया है। श्री जगदीश चन्द्र बसु ही सबसे पहले वैज्ञानिक है जिन्होंने इस बात की खोज की है कि पेड़-पौधों में भी मनुष्यों की तरह जान होती है और वे भी मनुष्यों की भाँति ही दुख-सुख का अनुभव करते है।

तुम्हें भी हर एक नई चीज़ को जानने और समझने का यत्न करना चाहिए। यदि तुम नई-नई बातों को जानने का प्रयत्न करो, तो हो सकता है कि तुम भी जगदीशचन्द्र बसु की तरह सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक बन जाओ।

एक उन्नतिशील बालक

बालक गोपाल कृष्ण गोखले

सरल हृदय में सच्चाई का,
बच्चो अपने दीप जलाओ।
आबदार मोती जिसमें हैं,
मन के उजले सीप खिलाओ।

बाल गोखले से दुनिया में,
तुम भी आगे बढ़ जाओगे।
जीवन की ऊँची चोटी पर,
रुके बिना ही चढ़ जाओगे।

बम्बई सूबे के रत्नगिरि जिले में एक [illegible] गाँव का नाम कंगाल है। उस गाँव में एक ब्राह्मण रहता था। ब्राह्मण का नाम कृष्णराव था। कृष्णराव बड़ा गरीब था। किसी प्रकार अपने जीवन के दिन बिताया करता था।

कृष्णराव था तो गरीब, किन्तु बड़ा सदाचारी था। सदाचारी होने के कारण गाँव के आदमी कृष्णराव का बड़ा आदर-सम्मान करते थे। कुछ दिनों के बाद कृष्णराव के एक बालक पैदा हुआ। बालक क्या था, चमकता हीरा हुआ था। कृष्णराव ने उसका नाम गोपालराव रखा।

गोपालराव गरीब माता-पिता की सन्तान था, इसलिये वह बड़ा सीधा और सरल था। वह जब अपने साथियों के साथ खेलने जाता, तो प्रायः कुछ लड़के उसे बनाया करते थे। लेकिन गोपालराव कुछ न बोलता, वह सब की बातों को बड़े धैर्य के साथ सुन लेता था।

गोपालराव में धैर्य नाम का बहुत बड़ा गुण था। वह बड़े-बड़े कष्टों को सह लेता, पर अपने गरीब माता-पिता से कुछ भी न कहता था। गाँव के आदमी इस गुण के लिये गोपालराव की बड़ी प्रशंसा किया करते थे।

एक दिन गोपालराव अपने एक मित्र के घर गया। वहाँ पहले से ही कुछ और लड़के जमा थे। सब मशीन से मलाई की बर्फ़ बनाने में लगे थे। गोपालराव भी जाकर बैठ गया। गोपाल राव को देखकर कुछ शरारती लड़कों को दिल्लगी सूझी। सबने आपस में कानाफूसी की और दिल्लगी करने की बात पक्की हो

गई। सीधे-सादे गोपालराव को क्या मालूम कि उस के साथ दिल्लगी करने के लिये जाल रचा जा रहा है।

जब मलाई की बर्फ़ बनकर तैयार हो गई, तो मित्रों ने तो मलाई की बर्फ़ खाई, लेकिन गोपाल को केवल मशीन के भीतर का पानी ही पीने को दिया। गोपाल ने पानी को ही मलाई की बर्फ़ समझ ली। पीछे से गोपाल को मलाई की बर्फ़ भी दी और उसकी काफी दिल्लगी उड़ाई।

गोपाल ने कभी मलाई की बर्फ़ खाई न थी। जब ठीक से खाने-पीने को ही नहीं मिल रहा था, तब फिर मलाई की बर्फ़ कहाँ से मिलती ? ऐसी हालत में अगर गोपाल ने पानी को ही मलाई की बर्फ़ मान लिया, तो आश्चर्य की बात क्या ?

गोपाल गरीब तो था, बड़ा स्वाभिमानी था। एक बार गोपाल के गाँव में एक नाटक मण्डली आई। मण्डली की तरफ़ से नाटक खेला जाने लगा।

गोपाल के साथी लड़के प्रायः नाटक देखने जाते थे, पर गोपाल न जाता था। सच बात तो यह थी कि नाटक देखने के लिये गोपाल के पास पैसा ही नहीं था।

एक दिन गोपाल के एक मित्र ने कहा—"तुम मेरे साथ नाटक देखने चलो। मैं पैसा अपने पास से दे दूँगा।" सीधा-सादा गोपाल, उस लड़के के साथ नाटक देखने के लिये चला गया। उसने अपने पास से दो आने पैसे देकर गोपाल का भी टिकट खरीद लिया।

लेकिन दूसरे दिन वह गोपाल से अपने पैसे माँगने लगा। गोपाल को उससे यह आशा न थी। यदि वह जानता कि साथी लड़का अपने पैसे वापस लेगा, तो वह नाटक देखने ही न जाता। गोपाल बहुत ही समझदार था। वह अपने माँ-बाप की ग़रीबी को देखकर बहुत ही सूझ-बूझकर चलता था।

पर गोपाल किसी का एहसान भी नहीं लेना चाहता था। स्वाभिमान उसका अपना गुण था। जब उस लड़के ने गोपाल से दो आने पैसे माँगे, तब गोपाल ने तुरन्त उसे दो आने पैसे दे दिए। गोपाल को महीने भर के खर्च के लिए, कुछ रुपये मिला करते थे। रुपये नपे-तुले होते थे। उन दिनों वह स्कूल में पढ़ता था। दो आने पैसे चले जाने पर फिर अब महीने का खर्च कैसे पूरा हो? माँ-बाप के कष्टों को देखकर, उनसे कुछ और माँगने का उसका साहस नहीं होता था। गोपाल ने दो आने पैसे को पूरा करने के लिए लालटेन जलाना बन्द कर दिया। जब तक दो आने पैसे की कमी पूरी न हो गई, गोपाल सड़क पर जलने वाली लालटेनों की रोशनी में पढ़ता रहा।

गोपाल बड़ा ही सरल और सत्यप्रिय था। वह कभी झूठ नहीं बोलता था। झूठ बोलना वह बहुत बुरा समझता था। वह ऐसे लोगों की संगति से प्रायः दूर रहता, जो झूठ बोलते या झूठ बोलने को बुरा नहीं समझते थे।

गोपाल स्कूल में पढ़ता था। एक दिन जब छुट्टी होने लगी, तो शिक्षक ने लड़कों को कुछ सवाल दिए कि वे उन्हें घर से हल करके लाएँगे।

दूसरे दिन जब सभी लड़के कक्षा में आए, तो शिक्षक ने सबकी कापियाँ माँगी। सबने अपनी-अपनी कापी शिक्षक को दे दी। गोपाल ने भी अपनी कापी शिक्षक के सामने रख दी।

शिक्षक ने जब लड़कों की कापियाँ देखीं, तो एक लड़के को छोड़कर किसी के उत्तर ठीक न थे। वह लड़का, वही गोपाल था जिसकी कहानी हम तुम्हें सुना रहे है।

शिक्षक ने कहा—"गोपाल, तुमने सभी सवाल बड़ी बुद्धि-मानी से हल किये हैं, इसलिये मैं तुम्हें एक पुरस्कार दूंगा।"

शिक्षक की बात सुनकर सभी लड़के गोपाल की ओर देखने लगे। पर यह क्या ? गोपाल तो पुरस्कार की बात सुन कर प्रसन्न होने के स्थान पर रोने लगा। शिक्षक और कक्षा के सभी बालकों को बड़ा आश्चर्य हुआ। शिक्षक ने बड़े स्नेह के साथ गोपाल को अपने पास बुलाकर कहा—"गोपाल, तुम रोते क्यों हो ? तुम्हारे सभी सवालों के उत्तर ठीक हैं। मैं तुम्हें इनाम दे रहा हूँ। तुम्हें तो प्रसन्न होना चाहिए।"

गोपाल की आँखों से आँसू गिरने लगे। उसने विनय के साथ उत्तर दिया—"महोदय, मैं इनाम का अधिकारी नहीं। क्योंकि मैंने सवाल अपनी बुद्धि से नहीं, अपने एक मित्र की मदद से हल किए हैं।"

शिक्षक महोदय गोपाल की सच्चाई पर मुग्ध हो उठे। उन्होंने कहा—"गोपाल, फिर भी मैं तुम्हें इनाम दूंगा। क्योंकि तुमने सच बोलकर सबके सामने अनोखा आदर्श रखा है।"

वही गोपाल जब बड़ा हुआ, तो भारत में गोपाल कृष्ण गोखले के नाम से प्रसिद्ध हुआ। गोपाल कृष्ण गोखले एक बहुत बड़े नेता थे। सेवा ही उनका व्रत था। वे जब तक धरती पर रहे, बराबर देश की सेवा में लगे रहे।

गोखले की सेवाओं ने ही उन्हें अमर बना दिया है। गोखले की सादगी, सच्चाई और सरलता को अपनाकर तुम भी गोखले की तरह महान् बन सकते हो।

एक देशभक्त बालक

बालक लोकमान्य तिलक

तोप-तीर-तलवारों से भी,
जिस ने कभी न डरना सीखा।
काँटों के ऊपर चल करके,
था स्वदेश पर मरना सीखा।

देश हमारा, धरती मेरी,
'लोकमान्य' का यह नारा था।
होनहार बचपन उनका था,
हँसता एक सितारा सा था।

एक दिन सवेरे दस बजे की बात है, एक पाठशाला में लड़के पढ़ने के लिए एकत्र हो रहे थे। जब गुरुजी पाठशाला में पहुँचे, तब उन्होंने पाठशाला के आँगन में मूँगफली के कुछ छिलके देखे। गुरुजी को यह गंदगी बड़ी बुरी मालूम हुई। वे उसके संबंध में लड़कों से पूछताछ करने लगे।

पाठशाला में एक लड़का पढ़ता था। उसे मूँगफली बहुत अच्छी लगती थी। वह प्रायः मूँगफली खाया करता था। गुरु जी को यह बात मालूम थी। उन्हें उसी लड़के पर संदेह हुआ।

लेकिन लड़का बड़ा संयमी था। वह अपने घर के बाहर कभी कोई चीज़ न खाता था। मूँगफली भी वह अपने घर पर ही खाया करता था। जब वह पढ़ने के लिए पाठशाला में जाता, तब फिर कुछ भी खाने-पीने का काम न लेता था।

पाठशाला के आँगन में मूँगफली के जो छिलके पड़े थे, वह उसने नहीं फेंके थे। जब घर के बाहर वह मूँगफली खाता ही था, तब फिर मूँगफली के छिलके फेंकने का सवाल ही कहाँ उठता है?

पर गुरुजी को उसी पर सन्देह हुआ। उन्होंने आँगन में मूँगफली के छिलकों को देखते ही समझ लिया कि हो न हो यह उसी लड़के का काम है। उन्होंने लड़के को अपने पास बुलाया और कड़ी दृष्टि से उसे देखते हुए कहा—"तुमने आँगन में मूँगफली के जो छिलके फेंके हैं, उन्हें उठाकर बाहर फेंक दो।"

लड़के को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह कुछ देर तक मन ही मन सोचता रहा, फिर उसने बड़ी ही निर्भयता के साथ कहा— "गुरूजी, छिलके मैंने नहीं फेंके है।"

किन्तु गुरुजी क्यों मानने लगे ? उन्होंने तो अपने मन पक्का विश्वास कर लिया था कि वह उसी लड़के का काम है लड़के ने बहुत कुछ कहा, लेकिन फिर भी गुरुजी ने छिल फेंकने का अपराध उसी के सिर पर मढ़ा।

लड़का बड़ा सत्यवादी था। 'सत्य' में उसका बहुत ब विश्वास था। गुरुजी से उसने बार-बार सच बात कही, पर फि भी गुरुजी ने उसे अपराधी बना ही दिया। लड़का इससे ब दुखी हुआ। उसने दूसरे दिन से पाठशाला में जाना ही ब कर दिया।

जब लड़के से यह पूछा गया कि वह पाठशाला क्यों न जाता, तब उसने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा कि जिस पा शाला में सत्य का आदर-सम्मान नहीं होता, मैं उस पाठशा में नहीं पढ़ सकता।

गुरुजी को जब सच्ची बात मालूम हुई, तब वे बहुत प ताए। उन्होंने लड़के को अपनी पाठशाला में पढ़ने के लिए बहु बुलाया, पर लड़का फिर उस पाठशाला में पढ़ने के लिए गया।

लड़के का नाम बलवंतराव था। यही बलवंतराव जब ब हुआ, तब देश में बाल गंगाधर तिलक के नाम से प्रसिद्ध हुआ तिलक बहुत बड़े देश-भक्त थे। निर्भीकता उनकी रग-रग समाई हुई थी। बड़े-बड़े कष्टों का भी वे बड़े साहस के सा सामना करते थे।

बचपन में तिलक पढ़ने-लिखने में बड़े तेज थे। वे अ स्कूल में प्रायः सब से आगे रहा करते थे। उनकी तेज बुद्धि प कभी-कभी उनके शिक्षकों को भी आश्चर्य में डूब जाना पड़ था। दस साल की उम्र में ही वे संस्कृत के साधारण श्लोकों अर्थ लगाने लगे थे।

तिलक का नाम जब अंग्रेजी स्कूल में लिखाया गया, तब वहाँ भी वे अपनी बुद्धि का चमत्कार दिखाने लगे। वे गणित और ज्यामेट्री के सवालों को जबानी ही हल कर दिया करते थे। कभी-कभी वे किसी प्रश्न को लेकर अपने शिक्षक से उलझ भी जाया करते थे।

एक बार हिसाब के घण्टे में शिक्षक महोदय हिसाब पढ़ा रहे थे। कक्षा में जितने लड़के थे, सब के हाथ में कापी-पेंसिल थी। शिक्षक ने सवाल बोलकर सब लड़कों को उसे हल करने की आज्ञा दी। सब लड़के अपनी-अपनी कापी पर सवाल लगाने लगे, पर बालक तिलक बैठे ही रहे। उनके हाथ में कापी और पेंसिल भी नहीं थी।

सहसा शिक्षक महोदय की दृष्टि बालक तिलक पर पड़ी। उन्होंने पूछा—"तुम क्यों चुपचाप बैठे हो ? सवाल क्यों नहीं लगा रहे हो ?"

बालक तिलक ने उत्तर दिया—"लगा रहा हूँ।"

शिक्षक ने आश्चर्य के साथ कहा—"लगा रहे हो ! किस चीज पर लगा रहे हो ? हाथ मे कापी और पेंसिल भी तो नहीं है।"

बालक तिलक ने उत्तर दिया—"कापी और पेंसिल की क्या आवश्यकता है ? मैं इसे जबानी हल कर रहा हूँ। लगभग हल भी कर चुका हूँ, जवाब सुन लीजिए।"

तिलक ने सवाल का जवाब शिक्षक को बता दिया। जवाब बिल्कुल ठीक था। बालक तिलक की तेज बुद्धि पर शिक्षक को भी आश्चर्य में डूब जाना पड़ा था।

एक बार शिक्षक ने बालक तिलक को हिसाब का एक [illegible] बोर्ड पर समझाने के लिए कहा। बोर्ड पर खड़िया

मौजूद थी। वालक तिलक ने एक वार खड़िया की ओर देखा और सोचा, कौन हाथ में सफेदी पोते ! वस फिर क्या ? लगे सवाल जवानी समझाने।

शिक्षक महोदय ने कहा—"यह क्या कर रहे हो ?"

तिलक ने उत्तर दिया—"सवाल समझा रहा हूँ।"

शिक्षक ने कहा—"पर उसकी क्रिया कहाँ है ?"

तिलक ने उत्तर दिया—"हमारे दिमाग़ में है।"

एक दूसरी वार शिक्षक महोदय डिक्टेशन लिखा रहे थे। पूरे डिक्टेशन में 'सन्त' शब्द तीन वार लिखने के लिये आया था। दूसरे लड़कों ने इस शब्द को चाहे जिस ढंग से लिखा हो पर वालक तिलक ने जान वूझकर उसे तीन प्रकार से लिखा था—'संत', 'सन्त' और सनत। शिक्षक ने जब वालक तिलक की कापी देखी, तब वे उन पर बहुत नाराज़ हुए। उन्होंने केवल 'सन्त' को ठीक मानकर, शेप दो तरह से लिखे हुए 'संत' को ग़लत कर दिया।

पर वालक तिलक ने इसे स्वीकार न किया। वे शिक्षक से वहस करने लगे। जब वहस ने तूल पकड़ी, तब शिष्य और गुरु दोनों हेडमास्टर के पास पहुँचे। शिष्य और गुरु दोनों के तर्कों को सुनकर हेडमास्टर साहब ने अपना फ़ैसला वालक तिलक के पक्ष में ही दिया।

वालक तिलक की यह निर्भीकता और सच्चाई उनके जीवन में सदा वनी रही। वे अपनी निर्भीकता, सच्चाई और वुद्धिमत्ता से ही तो देश के वहुत वड़े नेता वने।

क्या तुम भी तिलक की तरह निर्भीक, सत्यनिष्ठ, वुद्धिमान और देश भक्त वनने का यत्न करोगे ?

एक विचारवान् बालक

बालक विवेकानन्द

एक हवा चलती साँसों में,
'नीर' एक है प्यास बुझाता।
सूरज एक सवेरे जग कर,
कर में सबको एक जगाता।

एक ज़मीं है बिस्तर सबका,
आसमान है एक सहारा।
'ऊँच-नीच' फिर यह कैसा है,
'छुआ-छूत' का क्यों है नारा ?

एक बालक था। बालक का नाम नरेन्द्र था। नरेन्द्र के घर ोड़ों का एक साईस था। साईस और नरेन्द्र में खूब पटती ी। साईस से जब कोई विवाह करने के लिए कहता, तब वह चेड़ उठता था। साईस नरेन्द्र को बराबर ऐसी कहानियाँ ुनाया करता था, जिसमें विवाह न करने की बातें हुआ करती ीं। नरेन्द्र उन कहानियों को बडे प्रेम से सुना करता था। ऐसा ागता था, मानो उन कहानियों के एक-एक अक्षर को वह अपने ृदय पर लिखता जा रहा हो।

नरेन्द्र अपनी माँ से बराबर ऋषियों और मुनियों की हानियाँ भी सुना करता था। वह यह भी सुना करता था कि ऋषि और मुनि जंगलों में रहते हैं और महीनों ध्यान लगाकर ठे रहते हैं।

नरेन्द्र के मन में ऋषियों और मुनियों को देखने की बात राबर पैदा हुआ करती थी। वह यह भी बराबर सोचा करता ा कि यदि हम भी कौपीन पहनकर और भस्म लगाकर ध्यान गा सकते तो कितना अच्छा होता !

आखिर एक दिन नरेन्द्र से न रहा गया। वह खेल ही खेल ें अपने साथियों के साथ ध्यान लगाने के लिए बैठ गया। सब े आसन लगाकर अपनी-अपनी आँखें बन्द कर लीं।

पर कितनी देर तक ! एक लड़के ने थोड़ी ही देर में अपनी आखें खोल लीं। उसने आँखें खोलने पर आश्चर्य के साथ देखा कि एक भयानक साँप रेंगकर चला आ रहा है।

लड़का जोर से चिला उठा। उसका चिल्लाना था कि

सभी लड़कों के नेत्र खुल गए। सब के सब छलांग मारते हुए भाग खड़े हुए। पर नरेन्द्र अपने स्थान से न हिला। वह आसन जमाये हुए ध्यान में डूबा ही रहा—डूबा ही रहा।

एक लड़के ने दौड़कर नरेन्द्र के माता-पिता को खबर दी। नरेन्द्र के माता-पिता ने आकर देखा, नरेन्द्र ध्यान में मग्न है और सर्प उसके सामने फण निकालकर बैठा हुआ है।

नरेन्द्र के माता-पिता चिन्ता में पड़ गए। वे सोचने लगे, क्या करें और क्या न करें? यदि सर्प को छेड़ते हैं, तो कहीं वह क्रोधित होकर नरेन्द्र को डस न ले, और यदि उसे छेड़ते नहीं हैं, तो वह न जाने इसी तरह कब तक बैठा रहे!

नरेन्द्र के माता-पिता मन ही मन भगवान की प्रार्थना करने लगे। अद्भुत आश्चर्य! सर्प अपने आपही रेंगकर चला गया।

सर्प के जाते ही नरेन्द्र की माँ ने दौड़कर नरेन्द्र का हाथ पकड़कर उठाया और कहा—"नरेन्द्र, तुम्हें मालूम नहीं, तुम्हारे पास बहुत बड़ा साँप बैठा हुआ था।"

नरेन्द्र ने उत्तर दिया—"नहीं माँ, मुझे कुछ भी मालूम नहीं। मैं तो ध्यान में डूबा हुआ था और एक ऐसी अनोखी छवि देख रहा था, जो कहीं देखने को नहीं मिलती।"

बालक नरेन्द्र जब 'छुआ-छूत' और जाति पाँति की बातों को सुनता, तब उसके मन में यह सवाल पैदा होता, कि लोग आपस में एक-दूसरे को क्यों नहीं छूते और लोग क्यों नहीं एक-दूसरे के हाथ का खाना खाते। एक-दूसरे के हाथ का खाना खाने से क्या लोगों की सूरतें बदल जाती हैं, या उनपर छत टूट कर गिर पड़ती है।

बालक नरेन्द्र के पिता वकील थे। उनके मुवक्किलों में ...ति और धर्मों के लोग थे। उन्हीं में एक पेशावरी ...न भी था। वह जब भी आता, 'सदेश' और 'रसगुल्ले'

लेकर आता था, और बालक नरेन्द्र के हाथों में दे देता था। बालक नरेन्द्र उसकी गोद में बैठकर बड़े प्रेम से 'सन्देश' और 'रसगुल्ले' खाया करता था।

पर इस बात को लेकर नरेन्द्र के घर में एक आन्दोलन खड़ा हो गया—"नरेन्द्र, क्यों पेशावरी मुसलमान के हाथ का 'सन्देश' और 'रसगुल्ले' खाता है ? यह तो धर्म के विरुद्ध है।"

लोगों के इस विरोध ने बालक नरेन्द्र के मन में एक सवाल खड़ा कर दिया—"कोई आदमी किसी-दूसरे आदमी के हाथ का क्यों नहीं खाता ? अगर एक जाति का आदमी दूसरी जाति के आदमी के हाथ का खा ले तो उससे क्या होता है ? क्या वह मर जाएगा, या उसके सिर पर छत टूटकर गिर पड़ेगा।"

बालक नरेन्द्र के पिता की बैठक में कई जड़ाऊ हुक्के रहते थे। वे हुक्के उन विभिन्न जातियों के आदमियों के लिए थे जो नरेन्द्र के पिता के पास अपने मुकदमों के उद्देश्य से आया करते थे।

बालक नरेन्द्र के मन में उन हुक्कों ने भी एक सवाल पैदा कर दिया। वे सोचने लगे—"सबके लिए अलग-अलग हुक्के क्यों हैं ? एक किसी जाति का आदमी दूसरी जाति के मनुष्यों के हुक्के पी लेता है, तो क्या उसकी सूरत बदल जाती है ?"

और एक दिन बालक नरेन्द्र ने स्वयं इसकी परीक्षा ली। बैठक में सन्नाटा देखकर, वे क्रम से एक-एक करके उन सभी हुक्कों को पीने लगे, जो बैठक में रखे हुए थे। इसी समय बैठक में उनके पिता आ पहुँचे। उन्होंने नरेन्द्र को एक-एक करके सभी हुक्कों को पीते हुए देखकर पूछा—"नरेन्द्र यह क्या कर रहे हो ?"

बालक नरेन्द्र ने बड़े ही सरल भाव से उत्तर दिया—"पिताजी, मैं इन सभी हुक्कों को बारी-बारी से पीकर देख रहा हूँ कि मुझमें कुछ परिवर्तन होता है या नहीं ?"

बालक नरेन्द्र के इस उत्तर को सुनकर उसके पिता आश्चर्य में पड़ गए। सोचने लगे—"यह बालक बड़ा होने पर क्या बनेगा ?"

जानते हो, वह बालक बड़ा होने पर क्या बना ? बहुत बड़ा संन्यासी। क्या तुमने स्वामी विवेकानन्द का नाम सुना है? जानते हो स्वामी विवेकानन्द कौन थे ? यही बालक नरेन्द्र। बालक नरेन्द्र ही बड़ा होने पर स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए।

स्वामी विवेकानन्द ने मनुष्यों को मनुष्य से प्रेम करने की शिक्षा दी है। उन्होंने कहा है—"सबके भीतर एक ही ईश्वर का वास है। सब आपस में भाई-भाई हैं। इसलिए सबको आपस में एक-दूसरे से प्रेम करना चाहिए।"

तुम्हें चाहिए कि तुम विवेकानन्द के गुणों को ग्रहण करो। किसी से घृणा मत करो, सबसे प्रेम करो, सबसे मिलकर रहो। यदि तुम दूसरों से प्रेम करोगे, तो दूसरे लोग भी तुम्हें अपने हृदय का प्यार देंगे।

एक राष्ट्र-नेता बालक

बालक महात्मा गांधी

राष्ट्रपिता गांधी जी भी थे,
बालक जैसे कभी तुम्हारे ।
किन्तु आदमी—सच्चाई में,
सबसे थे तुम सबसे न्यारे ।

गांधी अगर तुम्हें बनना है,
दुनिया में आगे बढ़ना है ।
त्याग, अहिंसा सच्चाई का,
तो फिर पाठ तुम्हें पढ़ना है ।

एक बालक था। बालक का नाम मोहन था। मोहन स्कूल में पढ़ता था। मोहन के संगी-साथी बहुत चाहते थे कि वह उन के साथ खेले-कूदे, बातचीत करे और साथ ही साथ सैर-सपाटे भी करे, पर मोहन सबसे दूर ही रहता था। न जाने क्यों उसे सबसे घृणा थी। शायद, इसलिये कि, उनमें से कई लड़के बीड़ी पीते थे और कई झूठ भी बोलते थे।

मगर कब तक? एक लड़के ने मोहन को अपना साथी बना ही लिया। मोहन भी उसे अपना सच्चा साथी समझने लगा। मोहन का वह साथी किसी लड़के से कम बुरा न था। वह बीड़ी तो पीता ही था, मांस भी खाता था। मोहन को भी उसने अपने साँचे में ढालने की कोशिश की।

बालक का मन ही तो है! वह बुराई-भलाई क्या जाने? मोहन भी उसकी संगति में पड़कर बीड़ी पीने लगा और मांस भी खाने लगा।

मोहन का साथी उसे बीड़ी पिलाता और मांस भी खिलाया करता था। यद्यपि मोहन बीड़ी पी लेता और मांस भी खा लेता, पर साथ ही साथ वह इस के लिये मन में पछताया भी करता था।

मोहन अपने माता-पिता का बड़ा भक्त था। उसके माता-पिता मांस खाने की कौन कहे, कभी हाथ से छूते तक न थे। मोहन अपने मन में बराबर सोचता कि, वह अपने माता-पिता से छिपाकर बीड़ी पी रहा है और मांस खा रहा है, इसलिये बुरा काम कर रहा है। उसके माता-पिता जब सुनेंगे, तब

ा सोचेंगे ? उनके हृदय को कितनी चोट लगेगी, वे कित
होंगे ।

मोहन अपने मन में पछताता तो अवश्य था पर उसक
उसे अपने साथ खींच ही ले जाता था ।

प्रतिदिन बीड़ी पीने और माँस खाने के लिये पैसों क
त तो पड़ती ही थी ! मोहन का साथी कुछ दिनों तव
धर-उधर से काम चलाता रहा, इसके बाद वह घर से पैरं
 लगा । उसने मोहन में भी धीरे-धीरे चोरी करने क
 डाल दी । मोहन भी अब अपने घर वालों की जेब रे
उड़ाने लगा । लेकिन मोहन का हृदय उसे फटकार भ
या करता था । मोहन जब कभी अकेले में बैठता, औ
 कामों पर विचार करता, तो उसके मन पर एक गहर
भी लोट जाया करता था ।

घर से पैसे चुराने पर भी मोहन के साथी पर कर्ज हं
। एक-दो रुपये नहीं, पच्चीस रुपये । मोहन का साथी अ
क चिन्ता में पड़ा कि, कर्ज कैसे चुकाया जाय ? मोहन क
स बात से बड़ी चिन्ता हुई कि, उसके साथी पर कर्ज हं
है । मोहन भी, अपने साथी को कर्ज से छुटकारा दिला
नये उपाय सोचने लगा ।

मोहन का एक छोटा भाई था । वह अपने हाथ में सों
एक कड़ा पहने हुए था । मोहन के साथी ने उससे कहा कि
 वह अपने भाई के कड़े से थोड़ा-सा सोना किसी प्रका
 ले तो कर्ज से छुटकारा पाया जा सकता है । मोहन अप
ी को आपदा में फँसा हुआ देखकर उसकी बात पर तैया
ाया ।

मोहन ने अपने भाई के कड़े में से किसी तरह थोड़ा-स

सोना काटकर, अपने साथी को दे दिया। मोहन के साथी ने उस सोने को बेचकर कर्ज़ से अपना पिण्ड छुड़ाया।

पर इस के साथ ही साथ मोहन के मन में हलचल भी पैदा हो उठी। रह-रहकर मोहन का मन बेचैन होने लगा। मोहन जब कभी भी अपने इस काम के बारे में सोचता, तो उस का मन उसे खूब खरी-खोटी सुनाता था। मोहन रह-रहकर यही सोचता कि, उसने ऐसा बुरा काम क्यों किया—क्यों किया?

मोहन को अपने आप पर ही अधिक ग्लानि होने लगी।

आखिर, मोहन ने यह निश्चय किया कि, वह अपनी इस चोरी को अपने पिता पर प्रकट कर देगा। वह उनसे अपनी बुराइयाँ बताकर उनसे क्षमा माँगेगा। वे क्षमा करें या न करें, पर उसका मन इससे साफ़ हो जाएगा—धुल जाएगा। आज जो दुख उसे परेशान कर रहा है, वह उसके मन से निकल जाएगा—अवश्य निकल जायेगा।

मोहन के पिता उन दिनों बीमार थे। एक दिन मोहन साहस करके अपने पिता के कमरे में गया। पर उसकी हिम्मत न हुई कि, वह ज़बानी अपनी बुराइयों का हाल अपने पिता से कहे। वह कमरे से निकल गया और चिट्ठी लिखने लगा। उस ने चिट्ठी में अपनी एक-एक बुराई खोल कर लिख दी। अंत में उस ने अपने पिता से प्रार्थना की कि वे उसके अपराध को क्षमा कर दें।

मोहन चिट्ठी लेकर अपने पिता के कमरे में गया। उसने काँपते हुए हाथों से चिट्ठी अपने पिता के हाथों में दे दी। उसके पिता चिट्ठी पढ़ने लगे, और वह चुपचाप अपने पिता के सामने खड़ा रहा। शायद, इसलिये कि वे जो कुछ सजा देंगे, वह उसे भोगेगा।

चिट्ठी पढ़ने-पढ़ते मोहन के पिता की आंखें भर आईं। आँसू की बूंदे ढुलक-ढुलक कर नीचे गिरने लगीं। आँसू की उन बूंदों ने मोहन के हृदय को वेध दिया। उसने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि वह अब कभी भी बुरे कामों में नहीं फँसेगा।

जानते हो, मोहन बड़ा होने पर किस नाम से प्रसिद्ध हुआ? मोहनदास कर्मचन्द गाँधी। उन्हीं को तो हम राष्ट्रपिता, 'बापू' और महात्मा गाँधी भी कहते है। महात्मा गाँधी अपनी सादगी, सच्चाई, अहिंसा और त्याग स ही संसार मे अमर बन सके है।

तुम्हें भी महात्मा गाँधीजी की राह पर चलना चाहिए, उनके गुणों को अपनाना चाहिए, उनके गुणों को अपनाने से ही तुम गाँधी जी की तरह महान्